दिगंबरजैनग्रंथमाला नं. ४५

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

आराधनास्वरूप ।

(अनेक स्तुतिएं, पदों आदि सहित)

संग्रहकर्ता—

मुनीम धरमचंदजी हरजीवनदास-पालीताणा.

प्रकाशक—

मूलचंद किसनदास कापड़िया-सूरत.

प्रथमावृत्ति. वीर सं. २४४२. प्रतियाँ २१००

घोघा (भावनगर) निवासी स्वर्गवासी शेठ ठाकरशी नत्थुभाईके स्मरणार्थ 'दिगंबर जैन' के ग्राहकोंको नववाँ वर्षका पांचवाँ उपहार ।

मूल्य रु. ०-४-०.
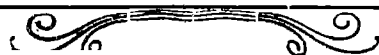
प्रस्तावना।

ए तो निःसंशय छे के **'दिगंबर जैन'** पत्रना ग्राहकोने अमुक अमुक ग्रहस्थो के व्हेनोना स्मरणार्थे पुस्तको भेट आपवानी योजना शरु थई छे त्यारथी ए दिशा तरफ अमारा गुजरातना केटलाक भाईओनुं लक्ष दोरायुं छे अने प्रथम ज्यारे सूचनाओ करवाथीज तेमां फळीभूत थवातुं हतुं त्यारे हवे तो विना सूचना कर्ये आवी सहायता मळती जाय छे, एनो दाखलो आज पुस्तक छे के जे माटे रु. १२५) **घोघा** (भावनगर) निवासी **स्वर्गवासी शेठ ठाकरशी नत्थुभाईना** स्मरणार्थे शास्त्रदान माटे तेमना पुत्र **छगनलालभाईए** मोकलवा इच्छा दर्शावेली, ते उपरथी ए माटे एक पुस्तकनी पसंदगी अमो करवाना हता, पण ते पहेलां भाई छगनलालना स्नेही पालीताणा निवासी **मुनीम धरमचंदजी हरजीवनदासे** जणाव्युं के ए माटे हुं जे पुस्तक तैयार करी मोकलुं तेज छपाववानुं छे, जेथी पछी एमणे आ पुस्तक के जेमां सदासुखजीविरचित **'भगवतीआराधना'**-मांथी पाने ४०९ थी ४२२ सुधीनो, तेनों मूळ भाषामां उतारो करेलो छे ते तथा परचुरण पदो, स्तुतिओ, उपयोगी बोध वगेरेनो संग्रह लखी मोकलेलो, ते दाखल करीने आ पुस्तक **'दिगंबर जैन'**ना ग्राहकोने **नवमा वर्षनी पांचमी भेट** तरीके प्रकट कर्युं छे.

वळी आ पुस्तकमां प्रथम स्वर्गवासी शेठ ठाकरशी नत्थुभाईना **जीवननी टूंक नोंध** जे तेमना निकटना स्नेही आंकळावनिवासी **शा माणेकचंद फूलचंदे** लखी मोकलेली छे ते पण दाखल करी छे, जे वांचवाथी वांचकोने जणाशे के एक साधारण स्थितिना ग्रहस्थे पोता पाछळ शुभ कार्यो माटे रु. १५००) नी सखावत योग्य व्यवस्थापूर्वक करी छे. जैनोमां दाननी रकमो तो हजारो रुप्या नीकळे छे, पण तेनो बराबर रीते उपयोग थतो नथी, माटे समयने

अनुसरीने हाल तो दाननी रकमोनो उपयोग विद्यादान, शास्त्रदान, जीर्णोद्धार अने जीवदया माटेज करवो जरूरनो छे. आपणे इच्छीशुं के आ रु. १५००) ना दाननुं अनुकरण आपणा बीजा भाईओ करशेज.

वीर सं. २४४१
ज्येष्ठ वदी २
ता. १७–६–१६

जैनजातिसेवक–
मूलचंद किसनदास कापडिया
सूरत.

स्वर्गवासी शेठ ठाकरसी नत्थुभाइना-
जीवननी टूंक नोंध.

रत्नो धूळमांथी मळी आवेछे, एवी आपणी परापूर्वन्त गुजराती कहेवतने स्वीकार्या सिवाय चालशे नहि. आजथी दश वर्ष पहेलां भारतवर्षने एवां स्वप्नो पण नहि आवेलां के देशसुधारानी प्रगतिमां आटलो आगळ वधारो थशे, पण आजकाल हिंदमां हस्ती धरावती संख्याबंध पारमार्थिक संस्थाओ अने ते सघळा उपर उन्नतिनो झुंडो स्थापनार घणाखरा गरीब अवस्थामां उछळी, अचानक बहार आवी, महान पुरुषोमां गणना पामेला जणाया छे. तेमनां सत्कार्यो तथा आनंदमंगळनी मढुलीओ देशना वत्नीओने वारसारूप छे. अत्यारे जे व्यक्तिना जीवनप्रदेश तरफ आपणे वळीए छीए, ते व्यक्ति महान पुरुषोना पत्रकमां नाम नोंधावी गयेल नथी, तेम तेवा प्रसंगो अने संयोगोमां तेमनुं उछळवुं पण थयुं नहोतुं. महद् भाग्य ने महद इच्छाना तेओ साधक नहोता, एटले सर्वसाधारण पण स्वच्छतादर्शक हतुं. उपर जणाव्या मुजब तेओ महान पुरुष नहोता, पण **महान पुरुषोना गुणोनो कंईक अंश तेमनामां हतो, एम निर्विवाद लखवुं पडेछे.**

दरियाइ मार्गपर काठियावाडने किनारे **घोघा** बंदर छे, त्यां दिगंबर जैन **दशाहुमड** ज्ञातिमां **शेठ नत्थुभाई झवेरचंद**नुं कुटुंब जाणितुं हतुं अने आ चरित्रना नायक शेठ ठाकरसीभाईनो **जन्म** तेज कुटुंबमां शेठ नत्थुभाईने त्यां थयो हतो. तेमना पिताए घोघामां एक कुशळ गांधी व्यापारी तरीके सारी ख्याति मेळवी हती; तेमने बे पत्नी हतां, जेमांनी बीजी हाल हयात छे. प्रथम पत्नीथी तेमने बे पुत्रो हता, जेमां मोटानुं नाम **टोकरसी** अने बीजा आ निबंधनायक **ठाकरसीभाई** हता.

वीसमी सदीनी शरूआतमां अत्यारना प्रमाण करतां केळवणी पामवाने सगवड तथा साधनो घणां ओछां हतां, जेथी ते जमानाना पुरुषो स्कुलकेळवणी करतां संसार के व्यवहारकुशळ बनवुं वधारे पसंद करता, अने तेवोज क्रम रा. ठाकरशीभाई माटे तेमना पिता तरफथी योजवामां आव्यो हतो. आपणी देशी केळवणीनो बनी शके तेटलो योग्य अभ्यास कराव्या बाद लग्नसंबंधथी तेमने जोडवामां आव्या. त्यार बाद रा० ठाकरशीभाईए संसारसमुद्रमां पोतानी जीवननौका झोंकावी अने ते समये व्यापारमां **व्यवहारज्ञ एक कुशळ सुकानी** तरीके तेमणे सारी नामना मेळवी. रा. **वक्ताए** एक ठेकाणे लख्युं छे के "दैव्यनी वातो विचित्र होय छे, हर्षशोकनी रंगीन ध्वजापताका दुनियामां क्षणे क्षणे फरक्या करे छे अने दशी वीसी या उदय अस्तना पडदा निरंतर ऊंचा नीचा थया जाय छे." ए सुत्रोनो अनुभव रा. ठाकरसीभाईने पण लेवो पडयो. संवत १९५७मां तेमना पेढीनायक पिता शेठ नत्थु गांधीनो स्वर्गवास थयो, व्यापारमां नुकशान आववा लाग्युं, जळमार्गी

वहाणोमां पण कुदरतनी गेबी लाकडी अचानक अथडाई, त्यां
पछीनी स्थितिने सुधारवाना इरादाथी नोकरी नापसंद करत
होवाथी कोई **स्वतंत्र व्यापार** अर्थे संवत १९५९मां रा.
टाकरसीभाई **भावनगर** आव्या, पण सारी मूडी मळे नहि अने
पूर्वनी जाहोजलालीमां तुर्तातुर्त पेसवुं ए बनी शके तेम नहोतुं;
जेथी तेओए थोडे पैसे स्वतंत्रतानो अनुभव लेवा **दुधनी दुकान**
खोली, तेमां प्रमाणिकपणे काम चालताथी तेमां तेमने फायदो मळवा
मांडयो. काम आगळ वधारवानी इच्छाथी मदद अर्थे तेमना
पुत्र छगनलाल जे ते समये गुजराती स्कूलमां मास्तर हता,
तेमने नोकरी मुकावी आ कार्यमां योज्या.

प्रवृत्ति वधतां पैसानी प्राप्ति थवा मांडी. सत्यज छे के
**कार्य प्रति हिंमत न हारतां स्वाश्रय-खंत-बिनप्रमाद
निखालसी हृदय साथे धर्म प्रति श्रद्धा अने आ उन्नतिना
शृंगे चढावनारी केटलीक सडकोमांनी आ मर्हुम टाकरसी-
भाईमां दृष्टिगोचर थती हती.**

तेमना त्रण पुत्रो श्रीयुत्-छगनलाल, अमरचंद तथा हीरालाल
अने बे पुत्रीओ वगेरे सारी स्थितिमां दिवस निर्गमन करे छे.
आ सुखी युथ स्वजन स्नेहीने बाह्य चक्षुथी छेल्लां निरखी
संवत १९७२ **ना कारतक वद** ३ ने बुधवारना प्रभाते दिव्य
चक्षुथी संतोषातां **परलोकगमन** थयुं. प्रभो ! आ भविक
आत्माने शांति-शांति बक्षो.

नामांकित जनो तथा मातबर श्रीमंतोना संबंधी घणुं
लखवामां आवे छे, पण अनुकरणीय सद्गुणसंपन्न साधारण
पुरुषोने ढंकायेल गुप्त राखवानी रीतमां सुधारो करवा जैनेत्तरे
विचारवा जेवुं छे,

गमे तेवी हालतना पण चारित्रवान पुरुषोने बहार लाववानी भावना जैन प्रजाना हृदयतटपर चित्रावबी जोईए.

श्रीमंतोना करोडो रुपिया करतां स्वाश्रयी साधारण मनुष्यना **सो रुपीआ वधारे बरकतवाळा होय** छे, ए दाखलो अंतरमां उतारी वांचके स्वर्गवासी ठाकरशीभाईना अवसान समयनी दान–व्यवस्था तरफ दृष्टि करवानी छे. छेवटमां मारा मित्र रा. वक्ताना शब्दोमांज वांचकने ध्यानमां राखवा सोनेरी कलम हस्तगत करावी विलोकी शेठ **ठाकरसीभाईना** आत्माने पुनः पुनः शांति याचतो विरमीश.

"उच्च कोटीनां जीवनचरित्रो अवलोकवां अने आचरणमां मूकवां ए वांचकना भावी उदयनो अनुपम आरसो छे "

नीचेनी तेमनी दान व्यवस्था तरफ नजर फेरवीशुं–

१७५) **गरीबोने** अनाज, कपडां तथा पशुओने घास विगेरेमां.

१२५) जीवदयामां.

२५) तेओना अवसाननी तिथिए कसाईवाडे जीव छोडाववा सारु.

१००) तेओश्रीनी अवसानतिथिए हर वर्षे घोघामां माछलानी जाळ छोडाववामां ते रकमना व्याजमांथी उपयोग.

१५०) भावनगरना देहरासरजी माटे **इंद्रध्वजानी गाडी** करावबी.

१२५) भावनगरना देहरासरजी माटे **चांदीनुं तोरण** करावबामां.

५०) भावनगरना देहरासरजीमां दर साले अमुक तिथिए **अभिषेक, पूजा** तथा **प्रभावना** तेना व्याजमांथी थाय.

१००) भावनगरमां विद्यानंदगुरुनां पगलां गाम बहार छे तेना **जीर्णोद्धारमां.**

१००) घोघाना दहेरासरजीना जीर्णोद्धारमां.
१००) श्री '**दिगंबर जैन**' पत्रमां **एक पुस्तक** भेट आपवा माटे.
१६५) **विद्यादानमां** तथा अनाथाश्रमोमां नीचे मुजब आप्या—

२०) भावनगरनी दि. जै. **संतोकब्हेन पाठशाळामां** भणती बाळाओने इनाम वहेंचवामां.
२५) हस्तिनापुरना रूषभ ब्रह्मचर्याश्रममां.
२५) बनारसना स्याद्वाद महाविद्यालयमां.
२५) मुरादाबादना श्राविकाश्रममां.
२५) दिल्हीना अनाथाश्रममां.
१०) मुंबाईना श्राविकाश्रममां.
१०) महाविद्यालय—मथुरा.
१०) प्रे. मो. दिगंबर जैन बोर्डींग अमदावादना विद्यार्थीने स्कोलरशीप आपवामां.
५) नडियाद अनाथाश्रममां.
५) मुगां बहेरांनी शाळा—अमदावादमां.
३) बोरसदना अनाथाश्रममां.
२) वडोदराना श्री **फतेसिंहराव** अनाथाश्रममां.

१६५)

१०९०)

उपर मुजब रु. १०९०)नो हाल व्यय थई चुक्यो छे अने रु. ४१०)नो योग्य समये व्यय थतो जशे, एटले एकंदरे रु. १५००) जेवी सारी रकम समयने अनुसरता कार्यो माटे आ साधारण स्थीतिना ग्रहस्थ काढी गया छे तेज साधारण मनुष्योने जीवनमां जोडवा योग्य नमुनेदार दाखलो छे. अस्तु.

आंकळाव (खेडा)
वीर सं. २४४२. ज्येष्ठ सुद ११
ता. ११-६-१६

स्नेहांकित—
माणेकलाल फूलचंद शाह.

स्वर्गवासी शेठ ठाकरशी नत्थुभाई

घोघा (भावनगर)

'जैन विजय' प्रेस-सूरत.

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

वीस व्यहरमान स्तुति (सवैया ३१ सा)

श्री मंदिर आदि जिन राजत विदेह मांहि पानमें धनुष बपु धारे भगवंत है। कोटपूर्व आउ ज्ञान नंत ज्ञान दर्शवान सुखहु अनंत जाके वीरज अनंत है ॥ सिंहासन आसनपे आपश्री वीराजमान ग्वीरे तीहुं काल वाणी सुणे सब संत है। अब है वरतमान ध्यावे नित इंद्र आन मे हुं वंदु बीस जिन शिवतिय कंत है ॥

॥ श्लोक ॥

अर्हन्तः सिद्धाचार्योपाध्यायसाधवः परमेष्टिनः।
तेपि स्फुटं तिष्ठन्ति आत्मानि तस्मादात्मा स्फुटि मे शरणम् ॥

अर्थ—अर्हन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु ये पंच परमेष्टी है तेही मेरे आत्मामें तिष्टे हैं इससे आत्मा ही मुझे शरण है ॥

भावार्थ—यह परमेष्टी आत्मामें तब ही ठहर सकता है जब की उनका स्वरूप चिंतवन कर आत्मामें ज्ञेयाकार वा ध्येया-

कार किया होय इससे परमेष्टीको नमस्कार किया जानना और आगम भाव निक्षेप कर जब आत्मा जिसका ज्ञाता होता है तब वह उसी स्वरूप कहलाता है। इससे अर्हंतादिकके स्वरूपको ज्ञेयरूप करनेवाला जीवात्मा भी अर्हन्तादि स्वरूप हो जाता है और जब वह निरंतर ऐसाही बना रहे है तब समस्त कर्म क्षयरूप शुद्ध अवस्था (मुक्त) हो जाती है। जो समस्त जीवोंको संबोधन करनेमें समर्थ है सो **अर्हन्त** हैं अर्थात् जिसके ज्ञान दर्शनसुख वीर्य परिपूर्ण निरावरण हो जाते हैं सो ही अर्हन्त हैं, समस्त कर्मके क्षय होनेसे जो मोक्ष प्राप्त हो गया हो सो **सिद्ध** है, शिक्षा देनेवाले और पांच आचारोंको धारण करनेवाले **आचार्य** है। श्रुतज्ञानोपदेशक हो तथा स्वप्रमत्तका ज्ञाता हो सो **उपाध्याय** हैं। और रत्नत्रयको साधन करे सो **साधु** है।

यहां कोई प्रश्न करे कि, नमस्कार करनेकी योग्यता परमात्मामें कैसे है इसका उत्तर यह जीव नामा पदार्थ निश्चयसे स्वयंही परमात्मा है किन्तु अनादि कालसे कर्माच्छादित होनेके कारण जबतक अपने स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती है तबतक इसको **जीवात्मा** कहते है। जीव अनेक हैं, इस कारण जो जीव कर्म काटकर परमात्मा अर्थात् सिद्ध हो गये हैं; उनका स्वरूप जान उन्हीं जैसा अपना भी स्वरूप जानै तो उनके स्मरण ध्यानसे कर्मोंको काटकर जीवात्मा स्वयम् उस पदको प्राप्त होता है। अतः जबतक कर्म काटकर उनके जैसा न होय, तबतक उस परमात्माके स्वरूपको नमस्कार करना आवश्यक है तथा उसका स्मरण ध्यान करना भी उचित है।

प्रश्न—तीन रत्न और सम्यक् तप कहांपर तिष्ठे है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तप यह चारो आत्मामें ही तिष्टे है तिससे आत्मा ही मेरे शरण है। **भावार्थ**—दर्शन ज्ञान चारित्र और तप ये च्यारों आराधना मुझे शरण हो, आत्माका श्रद्धान आत्मा ही करे है, आत्माका ज्ञान आत्मा ही करे है, आत्माकी साथ एकमेक भाव आत्मा ही होता है और आत्मा आत्मामें ही तपे है, वही केवलज्ञान ऐश्वर्यको पावे है, ऐसे चारों प्रकार कर आत्माहीको ध्यावे इससे आत्मा ही मेरा दुःख दूर करनेवाला है, आत्मा ही मंगलरूप है।

सम्यक्त्वकी पहिछान।

अनंतानुबंधी ४, मिथ्यात्व १, सम्यग् मिथ्यात्व १ सम्यक्त्व १ इन सात प्रकृतिनिका उपशमतैं उपशम सम्यक्त्व होइ अर इन सप्त प्रकृतिनिके क्षयतै क्षायिक सम्यक्त्व होय है। बहुरि अनंतानुबंधी कषायनिका अप्रशस्त उपशमको होतैं अथवा विसंयोजन होतैं बहुरि दर्शनमोहका भेद जो मिथ्यात्व कर्म अर सम्यग् मिथ्यात्व कर्म इन दोऊनिकूं प्रशस्त उपशम रूप होतैं वा अप्रशस्त उपशम होतैं वा क्षय होनेके सन्मुख होतैं बहुरि सम्यक्त्वप्रकृतिरूप देशघातिस्पर्द्धकनिका उदय होतैं ही जो तत्वार्थका श्रद्धान है लक्षण जाका ऐसा सम्यक्त्व होइ सो वेदक ऐसा नाम धारक है। जहां विवक्षित प्रकृति उदय आवने योग्य नही होइ अर स्थिति अनुभाग

घटने वधने वा संक्रमण होनेयोग्य होइ तहां अप्रशस्तोपशम जानना । बहुरि जहां उदय आवने योग्य नही होइ अर स्थिति अनुभाग घटने वधने वा संक्रमण होने योग्य भी नही होइ तहां प्रशस्तोपशम जानना । बहुरि तिहां सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होतैं देशघातिस्पर्द्धकनिकै तत्वार्थ श्रद्धान नष्ट करनेकी सामर्थ्यका अभाव है । अर श्रद्धानकूं चल मल अगाढ दोष करि दूषित करे है । जातैं सम्यक्त्वप्रकृतिका उदयकै तत्त्वार्थश्रद्धानकै मल उपजावने-मात्रहीका सामर्थ्य है । तिह कारणतैं तिस सम्यक्त्व-प्रकृतिकै देशघातिपना है । तिस सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयकूं अनुभव करता जीवकै उत्पन्न भया जो तत्वार्थश्रद्धान, सो वेदक-सम्यक्त्व है, इसहीकूं क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहिये है । जातैं दर्शनमोहके सर्वघातिस्पर्द्धकनिका उदयका अभाव है लक्षण जाका ऐसा क्षय होतैं बहुरि देशघातिस्पर्द्धकरूप सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होतें बहुरि तिसहीका वर्तमानसमय संबंधीतैं उपरिके निषेक उदयकूं नहीं प्राप्त भये तिन संबंधी स्पर्द्धकनिका सत्ता अवस्थारूप हैं लक्षण जाका ऐसा उपशम होतै वेदकसम्यक्त्व होय है, तातै याहीका दूसरा नाम क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है ॥

अब इस सम्यक्त्वप्रकृतिका उदयतैं जो श्रद्धानकै चलादिक दोष लागे है तिनिका लक्षण कहे हैं । अपने ही " जे आप्त आगम पदार्थरूप " श्रद्धानके भेदनिविषैं चलायमान होइ सो चल है । जैसैं अपना कराया हुवा अर्हत्प्रतिबिम्बादिक विषैं "यहू मेरा देव है"

ऐसै ममता करी बहुरी अन्यका कराया अर्हत्प्रतिबिंबादिक विषै " अन्यका है " ऐसैं परका मानि परिणाममें भेद करे है तातैं चल कह्या है।

इहां दृष्टांत कहे है—जैसैं नाना प्रकार कल्लोलनिकी पंक्ति विषै जल एक ही तिष्ठे है तथापि भी नाना रूप होई चले है, तैसैं सम्यकत्वप्रकृतिका उदयतैं श्रद्धान है सो भ्रमणरूप चेष्टा करे है। **भावार्थ**—जैसे जल तरंगनिविषैं चंचल होई परंतु अन्य भावकूं न भजै; तैसैं वेदक सम्यगदृष्टिहू अपना वा अन्यका कराया जिनबिम्बादिक विषैं " " यह मेरा है यह अन्यका है " इत्यादिक विकल्प करे है, परंतु अन्य रागी द्वेषी देवादिककूं नाही भजे है।

अब मलिनपणा कहे हैं—जैसैं शुद्ध सोनाहू मलका संयोगतैं मैला होई है; तैसैं सम्यक्त्वहू सम्यकत्वप्रकृतिके उदयतैं शंकादिक मलदोषका संयोगतैं मलीन होई है। अब अगाढ कहे है। जैसै वृद्धका हस्तकी लाठी स्थानमें तिष्ठतीहू कंपायमान रहे है— गिरै नहीं तोहू दृढ नहीं है तैसैं आप्त आगम पदार्थनिका श्रद्धानरूप अवस्था तिस विषै तिष्ठता हूवा भी परिणाममें कांपे है, दृढ नहीं रहै, ताकूं अगाढ कहिये है। ताका उदाहरण ऐसा—समस्त अरहंत परमेष्ठीनिकै अनंतशक्तिपना समान होतैहू जाकै ऐसा विचार होई इस शांतिक्रिया विषैं शांतिनाथ स्वामी ही समर्थ है, बहुरि इस विघ्ननाशन आदि क्रिया विषैं पार्श्वनाथस्वामी ही समर्थ है इत्यादि प्रकार करि रुचि-प्रतीतीकी शिथिलता है तातैं बूढेका हाथ विषैं लाठीका शिथिलसंबंधपना करि अगाढका दृष्टांत है। ऐसैं सम्यकत्व

प्रकृतिके उदयकरि श्रद्धा चलमल अगाढ दोष क्षयोपशमसम्यक्त्वमें आवे हैं अर कर्मका नाश करनेकूं समर्थ है।

बहुरि अनंतानुबंधी ४, दर्शनमोहनीय ३, इन सात प्रकृतिनिका सर्व उपशम होनेकरि औपशमिक सम्यक्त्व होय है। अर इन सात प्रकृतिनिका क्षयतैं क्षायिक सम्यक्त्व होय है। इन दोऊ सम्यक्त्वमें शंकादिक मलनिका अंश भी नाहीं तातैं निर्मल है। अर परमागममें कहे पदार्थनिके श्रद्धानमें कहूं भी नहीं स्वलित होइ है। तातैं दोऊ सम्यक्त्व निश्चल है। अर आप्त आगम पदार्थ भगवान्के कहे तिनमें तीव्र रुचि धारे हैं, तातैं दोऊ ही सम्यक्त्व गाढरूप है। जातैं चलमल अगाढ दोष उत्पन्न करनेवाली सम्यक्त्व-प्रकृतिके उदयका अभाव है। तातैं ये दोइ सम्यक्त्व निर्दोष है।

अब व्यवहार सम्यक्त्वका विशेष कहे है—जो सत्यार्थ आप्त आगम गुरूका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। आप्तका स्वरूप ऐसा है—जो क्षुधा, तृषा, जन्म, जरा, मरण, राग, द्वेष, शोक, भय, विस्मय, मद, मोह, निद्रा, रोग, अरति, चिंता, स्वेद, खेद ये अठारह दोष-रहित होय; अर समस्त पदार्थनि के भूत भविष्यत् वर्त्तमान त्रिकाल-वर्त्ती समस्त गुणपर्यायनिकूं क्रमरहित एकैकाल प्रत्यक्ष जानता ऐसा सर्वज्ञ होय; बहुरि परमहितरूप उपदेशका कर्ता होय सो आप्त अंगीकार करना। जातै जो रागी द्वेषी होइ सो सत्यार्थ वस्तुका रूप नही कहे, अर जो आपही काम क्रोध मोह क्षुधा तृषादिक दोष-सहित होइ, सो अन्यकूं निर्दोष कैसै करे? अर जाकै इंद्रियांके आधीन ज्ञान होय अर क्रमवर्ती होय सो समस्तपदार्थनिकूं अनंता-

नंतानंतपरिणति सहित कैसैं जानै? अर दूरवर्ती स्वर्ग नरक मेरु कुलाचलादिनिकूं अर पूर्वै भये जे भरतादिक रामरावणादिक अर सूक्ष्म परमाणू आदिक सर्वज्ञविना कोन जानै? बहुरि परम हितोपदेशक विना जगतके जीवनिका उपकार कैसैं होय? तातैं वीतराग सर्वज्ञ परम हितोपदेशक विना आप्तपणा नही संभवे हैं।

जिनकै शस्त्रादिक ग्रहण करना तो असमर्थता अर भयभीतपणा प्रकट दिखावे है, अर स्त्रीनिका संग वा आभरणादिक प्रकट कामीपणा रागीपणा दिखावे है तिनकै आप्तपणा कदाचित नही संभवै है। तातैं परीक्षा करि जाकै सर्वज्ञता अर वीतरागता अर परम हितोपदेशकता ये तीन गुण होइ, सो **आप्त** है। जाकै वीतरागता ही होइ अर सर्वज्ञपणा नही होई तो वीतरागता तो घटपटादिक अचेतन द्रव्यनिकैहू क्षुधा तृषा रागद्वेषादिकके अभावतें पाइये है, तिनकै आप्तपणा प्राप्त होइ वा सर्वज्ञत्व विशेषण आप्तका नहि होय तो इंद्रियनिके आधीन किंचित् किंचित मूर्तिक स्थूल निकटवर्ती वर्तमान वस्तूके जाननेवालेके वचनकी प्रमाणता होई। सो अल्पज्ञके कहे वचन प्रमाण नहीं। तातैं अल्पज्ञानीकै आप्तपणा नहीं संभवे है तातैं वीतराग "सर्वज्ञ" ऐसा कह्या। अर वीतरागता अर सर्वज्ञपणा दोय विशेषण ही आप्तकै कहिये तो वीतराग सर्वज्ञपणा तो मोक्षस्थानमें सिद्धनिकैहू पाइये है। यातैं परम हितोपदेशकपणा विना आप्तपणा नहीं बने है। तातैं सर्वज्ञता वीतरागता परम हितोपदेशकता अरहंतहीकै संभवे है। बहूरि श्रुत जो आगम ताका लक्षण श्री रत्नकरंड नाम परमागममें ऐसा कह्या है—

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकं ।
तत्वोपदेशकृत् सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥ १ ॥

अर्थ—एते गुणसहित होय सो शास्त्र है। आप्त जो सर्वज्ञ वीतराग ताकी दिव्य ध्वनिकरी प्रकट कीया होय अर जाका अर्थ तथा शब्द वादि प्रतिवादी करि तिरस्कारकूं नही प्राप्त होइ, एकांतीनिकी मिथ्या युक्ति करी छेद्या नही जाय, बहुरि प्रत्यक्ष अनुमानकरि जामैं विरोध नही आवै, अर वस्तुका जैसा स्वभाव है तैसा तत्त्वभूत उपदेशका करनेवाला होइ, बहुरि समस्त जीवनिका हितरूप होइ। किसही जीवका अहितकूं नही करता होय, अर कुमार्गका दूरि करनेवाला होय सो शास्त्र है। जातैं अल्पज्ञानीका कह्या तथा रागी द्वेषीका कह्या तो प्रमाण ही नही है। तातैं आप्तका उपदेश्या आगम है सोही प्रमाण है। अर जाका अर्थ परवादीनिकरी बाधाकूं प्राप्त होइ प्रमाणकरि बाधित होइ सो काहेका आगम? बहुरि जामैं प्रत्यक्षप्रमाणसूं बाधा आजाय वा अनुमानसूं बाधा आजाय, सो काहेका आगम? बहुरि जामैं सारभूत जीवका कल्याण रूप उपदेश नही, सो काहेका आगम? बहुरि जो जीवनिका घात करनेवाला दुःखदायी होय, सो शास्त्र शस्त्र है, बुद्धिवानोनिकै आदरनेजोग्य नही है। अर जो संसारके कुमार्गकूं प्रवर्तन करावै, सो खोटा आगम है।

अब गुरुका लक्षण ऐसा है—

विषयाशावशातीतो निरारंभोऽपरिग्रहः
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥ १ ॥

अर्थ—जो पंच इंद्रियानिके विषयनिकी आशाकरिरहित होय, जाकै इंद्रियनिके विषयनिमै वांछा नष्ट हो गई होइ, बहुरि जाकै किंचिन्मात्रहू आरंभ नही होय, अर जाकै तिलतुष मात्र परिग्रह नही होय अर जो ज्ञान ध्यान तपमें लीन होय-रक्त होय सो तपस्वी प्रशंसा योग्य है। ऐसैं आप्त आगम गुरु मैं जाकै दृढ श्रद्धान होइ सो सम्यग्दृष्टि है। जातैं कार्तिकेयस्वामीहू **स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षाविषै सम्यक्त्वका लक्षण ऐसा कह्या** है—जो अनेकांत स्वरूप तत्त्वकूं निश्चय करि सप्त भंग करि सहित श्रुतज्ञान करि वा नयनिकरि जीव अजीवादिक नव प्रकारके पदार्थनिकूं श्रद्धान करै है' सो शुद्ध सम्यग्दृष्टि है। तथा जो जीव पुत्र कलत्र आदिक समस्त अर्थनिमैं मद गर्व नही करै है—उपशम भाव जे मंद कषायरूप भाव तिनकूं भावनारूप करै है अर आपकूं तृणवत् लघु मानै है अर विषयनिकूं सेवन करै है अर समस्त आरंभमें वर्तै है, तोहू जाकै मोहका ऐसा विलास है सो समस्त विषयनिकूं हेय मानै है—त्यागने योग्य मानै है। चारित्रमोहकी प्रबलतातैं विषयनिमैं आरंभमें प्रवर्तताहू विरक्त है—नही राचै है, जो उत्तम सम्यक् गुणनिके ग्रहणमें आसक्त है, अर उत्तम साधुजननिमैं विनयसंयुक्त जाकी प्रवृत्ति है, अर साधर्मीनिमैं जाकै अत्यंत अनुराग है, अर देहसूं मिलि रह्याहू अपने आत्माकूं अपना ज्ञानगुणकरि भिन्न जानै है, अर जीवसूं मिल्या देहकूं कंचुक जो वस्त्र वा बकतर समान भिन्न जानै है, सो शुद्ध सम्यग्दृष्टि है।

गाथा-णिज्जियदोसं देवं । सव्वजीवाण दयावरं धम्मं ।
वज्जियगंथं च गुरुं । जो मण्णादिसो हू सद्दिठी ॥ १ ॥

अर्थ—जो अठरा दोष रहित सर्वज्ञकूं तो देव माने है अर समस्त जीवनिकी दयामैं तत्पर ताकूं धर्म माने है, अर समस्त परिग्रहरहितकूं गुरु माने है, सो सम्यग्दृष्टि है ।

गाथा-दोससहियं पि देवं । जीवहिंसाइसंजुदं धम्मं ।
गंथासत्तं च गुरुं । जोमण्णादि सोहू कुदिठी ॥२॥

अर्थ—जो रागद्वेषादिक दोष सहितकूं देव माने है। अर जीवहिंसासहित धर्म माने है, अर परिग्रहमें आसक्तकूं गुरु माने है सो मिथ्यादृष्टि है। कोऊ देव मनुष्यादिक इस जीवकूं लक्ष्मी नहीं दे है। अर इस जीवका कोऊ उपकार नही करे है। उपकार अर अपकारकूं अपना उपार्जन कीया पुण्यपापरूप कर्म करे है। कोउकूं कोऊ अशुभ कर्म हरनेको अर शुभ कर्म देनेको तीन लोकमें देव दानव इंद्र अहमिंद्र जिनेंद्र समर्थ नही है-कर्म तो अपने शुभ अशुभ परिणामके अनुकूल बंधे है-अर द्रव्य क्षेत्र काल भावका निमित्तकूं पाय अपना रस देय निर्जरे है। तातैं पर तो निमित्त मात्र है। जो भक्ति करि पूजे हूये व्यंतर योगिनी यक्ष क्षेत्रपालादिकही लक्ष्मी देवै तो धर्म करना व्यर्थ होजाइ। समस्त व्यंतरनिहीकूं पूजि अपना हित करै, पूजा दान ध्यान शील संयमादिक निष्फल होजाइ। जातैं सुख आवैं सो सातावेदनीयकर्मके उदयतै आवे अर दुःख आवै सो **असातावेदनीयकर्मके** उदयतै आवै।

अर कर्म कोऊकूं कोऊ देनेकूं समर्थ नही है। तातैं अन्यकूं दूषण देना वा राग करना मिथ्या है। जो हितके इच्छक हो तो परम धर्ममें प्रवर्तन करो॥

बहुरि जिस जीवके जिस देशमें जिस कालमें जिस विधानकरिकै जन्म वा मरण, सुख, दुःख, लाभ, अलाभ, संयोग वियोग होना जिनेंद्र भगवान् केवलज्ञानकरि निश्चित जान्या है–देख्या है तिस जीवकै तिस देशमें, तिस कालमें, तिस विधानकरिकै तैसैंही होयगा। इसकूं अन्यथा करनेकूं चलायमान करनेकूं इंद्र वा अहमिंद्र वा जिनेंद्र समर्थ नही है। ऐसें जो निश्चय नयतैं समस्त द्रव्यनिके समस्त पर्यायगुणनिके परिणमनकूं जाने है सो शुद्ध सम्यग्दृष्टि है। अर जो इसमें शंका करै सो मिथ्यादृष्टि है। बहुरि जो तत्व जाननेकूं समर्थ नही है सो जिनेंद्रके वचननिहीमें श्रद्धान करे है। जो जिनेंद्र भगवान् दिव्य ज्ञानतैं देखि करि कह्या है, सो समस्तमें सम्यक् इच्छा करूं हूं–प्रमाण करूं हुं, ग्रहण करूं हुं ऐसा जाकै दृढ निश्चय है, सो मंदज्ञानीहू **सम्यग्दृष्टि** है।

सम्यग्दर्शनके पचीस दोष है–तिनकूं टारि श्रद्धानकूं उज्वल करना। तिनमैं मूढता तीन ३, अष्टमद ८, शंकादिक दोष आठ ८, अनायतन छह ये पचीस दोष हैं तिनमैं **मूढता**कूं वर्णन करे है– नदीस्नानमें धर्म मानै, समुद्रकी लहरीनिके स्नानमें धर्म मानै, पाषाणका वालूका पूंज करनेमें धर्म मानै, पर्वततैं पडनेमें अग्निमें प्रवेश करनेमें धर्म मानै, संक्रांतिमें दान करनेमें, ग्रहणमें स्नान करनेमें धर्म मानै,

सो लौकिक मूढ है। बहुरी हमारा वांछित देव देगा ऐसी आशा करना; तथा ग्रह, भूत, पिशाच, योगिनी, यक्ष, क्षेत्रपाल, सूर्य, चंद्रमा, शनैश्चरादिकनिकूं वांछितकी सिद्धीके अर्थि पूजा करना, दान करना **सो देवमूढता है।** तथा जे च्यारि निकायके देवनिके स्वरूपकरि रहित अर देव देवाधि—सर्वज्ञपणाकरि रहित जिनका विकारी रुप वा तिर्यंचनिकेसे मुख जिनका हस्तीकासा मुख सिंहकासा मुख गर्दभमुख वानरासे मुख सूर केसे मुख पूंछ सींग इत्यादि सहितकूं देव मानना, तथा त्रिमुख चतुर्मुख चतुर्भुज इत्यादिक प्रकट दिव्य देवके रूपरहित विकराल जिनके रूप तथा लींग योनि इत्यादिक विपरीत रूप जिनकूं देखे लज्जा उपजै तिनमैं, देवत्वबुद्धि करै अर देव मानी पूजा वंदना करै, देवनिके अर्थि बकरा भैसा इत्यादिकनिकूं मारि चढावै, तथा देवतानै मद्यमांसके भक्षक जानै, सो समस्त तीव्र मिथ्यात्वके उदयतैं देवमूढता कहिये हैं।

जे आरंभ परिग्रह हिंसाकरि सहित, पाखंडी, कुलिंगी, विषयनिके लोलपी, अभिमानिकूं गुरु मानी सत्कार वंदना पूजादिक करै; सो गुरुमूढता जाननी ॥ बहुरी ज्ञानका मद, कुलमद, जातिमद, बलमद, ऐश्वर्यमद तपोमद, रूपमद, शिल्पिमद, ये आठ मद सम्यक्त्वके घातक हैं ॥ इंद्रियजनित विनाशिक ज्ञानमें अहंकार करना तथा जाति, कुल, रूप, बल, ऐश्वर्य ये कर्मके उदयजनित हैं, तथा पर हैं, विनाशिक हैं, इनमें आपा धरना सो अष्ट मद मिथ्यात्वके उदयतैं हैं ॥ तथा कुदेव, कुधर्म, कुगुरु, अर इनके सेवक तिनकूं अनायतन कहे हैं। रागी द्वेषी मोही तथा जे देवपणारहित

ये कुदेव, अर जामैं तीव्र हिंसाकी प्रवृत्ति दयारहित सो कुधर्म, अर परिग्रहधारी विषयकषायकै वशीभूत सो कुगुरु, तीन तो ये भये। अर कुदेव, कुधर्म, कुगुरु, इनी तीननिके सेवन करनेवाले ये छहूही 'आयतन' कहिये धर्मके स्थान नही हैं, तातैं इनकूं अनायतन कहिये है। इनकी प्रशंसा करना, इनमें भले गुन जानना मिथ्यात्वके उदयतैं हैं॥

बहुरि शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढदृष्टिना, अनुपगूहन, अस्थितीकरण, अवात्सल्य, अप्रभावना ये आठ दोष सम्यक्त्वके हैं। इनिके प्रतिपक्षी अष्टगुण हैं। तिनमैं जो सर्वज्ञभाषित धर्ममें संशयका अभाव, सो निःशङ्कित है। सर्वज्ञ वीतरागही आराधनायोग्य देव है—अन्य रागी द्वेषी नही, रत्नत्रयके धारक विषयकषायनिके जीतनेवाले निर्ग्रंथ ही गुरु हैं—अन्य आरंभी परिग्रही नही, दयाभाव ही धर्म है—हिंसाभाव धर्म नही, देवगुरुके निमित्तकरि हुई हिंसा पापही फले है धर्मकूं नही उपजावे है। ऐसैं देव—गुरु—धर्मके स्वरूपमें संशयरहित निःशंक प्रवर्तै ताकै निःशंङ्कित गुण होय है॥ बहुरि इहलोकभय, परलोकभय, मरणभय, वेदनाभय, अनारक्षाभय, अगुप्तिभय, अकस्माद्भय इनि सप्तभयनिकरि रहित निशंकित गुण होय है॥ दशप्रकारके परिग्रहके वियोग होनेका भय, सो इस लोकका भय है। अर दुर्गति जानेका भय, सो परलोकका भय है। प्राणनिका नाश होनेका भय, सो मरणका भय है। रोगका भय सो वेदनाभय है। कोऊ हमारा रक्षक नही ऐसा अनारक्षाभय होय है। चोरनिका भय, सो अगुप्तिभय है। अचानक कोऊ आपत्ति दुःख

आवै ताका भय, सो अकस्माद्भय है। इनि सप्तभयनिका अभाव जाकै होय, सो निःशंकितगुणका धारक नियमतैं सम्यग्दृष्टि होय है ॥

सम्यग्दृष्टि इस लोकके भयके जीतनेकूं ऐसैं चिंतवन करे है—नखतैं लगाय शिखापर्यंत समस्त देहकूं अवगाहन करि जो ज्ञान तिष्ठे है, सो मेरा अविनाशी निज धन है, अनादिनिधन है, नवीन उत्पन्न नही, अर अनंतकालमें विनसै नही, यह मेरै निश्चय है, अर जो धन धान्य स्त्री पुत्र परिवार कुटुंब राज्य संपदा हैं ते परद्रव्य हैं, बिनाशीक हैं, जहां उत्पत्ति है तहां प्रलय है, अर जिसका संयोग है तिसका वियोग है, इनका मेरै अनेकवार संयोग भया अर वियोग भया, जातैं परिग्रहके नाश होतैं मेरा नाश नही अर परिग्रहका उत्पाद होतैं मेरा उत्पाद नही—उत्पादविनाश दोऊ परद्रव्यनिमैं हैं तातैं परद्रव्यका नाश होतैं स्वभाव अचल है—नाश नही, ऐसैं सम्यग्दृष्टि अपना रूपकूं अखंड अविनाशी ज्ञाता द्रष्टा देखे है—अनुभवे है। तातैं दशप्रकारका परिग्रह विनशनेका भय—जो मेरी धनसंपदा, मेरा स्त्री पुत्र कुटुंब, मेरा ऐश्वर्य मति कदाचित विनशि जाय ऐसैं परिणाममैं शंका सो, इसलोकका भय ताकूं सम्यग्ज्ञानी नही प्राप्त होय है ॥

परलोकमें दुर्गति जानेका भय, सो परलोकभय है, सो सम्यग्दृष्टीकै नही है। सम्यग्दृष्टि ऐसा विचार करे है—ज्ञान है सो मेरा वसनेका लोक है, इस अविनाशी ज्ञानलोकहीमैं मेरा निश्चल वसना है, अर जे नरक स्वर्ग मनुष्य तिर्यंच महादुःखनिके भरे लोक है सो मेरा लोक नही है—पुण्यपापातैं उपज्या है, पुण्यका उदय होई तदि जीव शुभगतिकूं प्राप्त होय है, सुगति दुर्गति दोऊ विनाशिक हैं; कर्मकृत

हैं, मै चिदानंद चैतन्य ज्ञाताद्रष्टा अखंड शिवनायक कर्मतैं भिन्न अपने ज्ञानलोकमें रहूं, ज्ञानलोकविना अन्य मेरा लोकही नही, ऐसैं चितन करतै परलोकका भय नही होय है ॥ जो सुगतिदुर्गतिसंबंधी इंद्रियजनित सुखदुःखमें आपा धारे है, ताकै परलोकका भय है। अर जो निःशंक कर्मकलंकरहित अपना स्वरूपकूं अविनाशिक अखंड अनुभवे है, ताकै परलोकका भय नही होय है ॥

अब रोगकी वेदनाका भयकूं निराकरण करे है ॥ जो अचल निजज्ञानकूं वेदे है—अनुभवे है, सो वेदना है, सो अनुभव करनेवाला जीव अर जिस भावकूं वेदे है—अनुभवे है सोहू जीव है, जो अपने स्वभावकूं वेदना—अनुभवना सो वेदना तो अविनाशीक है, मेरा रूप है, सो देहमें नही है। अर जो कर्मकरि करी हुई सुखदुःखरूप वेदना है सो मोहका विकार है, पुद्गलमें है, विनाशिक है, देहमें जाकै ममता है ताकै है। अर देहका घात करनेवाले रोगादिक ते देहमें हैं, देहका नाश करेगा। मै ज्ञाता द्रष्टा अमूर्तिक अविनाशी ताका एक प्रदेशकूं चलायमान करनेकूं समर्थ नही है। ऐसैं देहतैं अर देहमें उपजी वेदनातैं अपने स्वरूपकूं अखंड अविनाशी अनुभवे है, ताकै वेदनाभय नही प्राप्त होय है ॥

अब मरणभयका निराकरण करे हैं ॥ प्राणनिके नाशकूं मरण कहिये है। सो पंच इंद्रिय, मनोबल, वचनबल, कायबल, आयु, श्वासोश्वास ये दश प्राण हैं, सो देहकै हैं। विनाश होतैं इनका देहका विनाश होय है। ज्ञानप्राणसंयुक्त अमूर्त अखंड ऐसा मै आत्मा, तिसका नाश नही है। ऐसैं देहतैं अर देहजनित मूर्तिक विनाशिक दश-

प्राणनितैं आपकूं भिन्न अनुभवं है, ताकै मरणका भय नही होय है। जो मूढ देहका मरणकूं आत्माका मरण होना अनुभवे है, ताकै मरणका भय होइ। यातैं सम्यग्दृष्टि अपने आत्माकूं ज्ञान दर्शन सुख सत्ता इत्यादि भवप्राणरूप अनुभवै, ताकै मरणभय नही होय है॥

अब कोऊ हमारा रक्षक नही ऐसा अनारक्षा भयकूं कहे हैं॥ जगतविषे जो सत् है तिसका विनाश नही है ऐसैं वस्तुकी स्थिति प्रकट है। सत्का विनाश नही असत्का उत्पाद नही। मेरा ज्ञान सत् है, सो तीन कालमें इसका नाश हैं नही, ऐसा मेरै निश्चय है। यातैं मेरा चैतन्यस्वभावका अन्य कोऊ रक्षक नही, अर अन्य कोऊ भक्षक नही, पर्याय उपजे हैं पर्याय विनसे हैं। मेरा स्वभाव पुद्गलपर्यायतैं भिन्न अविनाशी ज्ञानमय है, याका रक्षक भक्षक कोऊ है नही। तातैं सम्यग्दृष्टि निःशंक निर्भय अपना ज्ञानमय निजस्वभावकूं वेदे है—अनुभवे है॥

चोरका भय सो अगुप्तिभय है, ताहि जनावे है,। जो वस्तूका निजस्वरूप है सोही सर्वोत्कृष्ट गुप्ति है। अपना निजस्वरूप-विषैं कोऊ परद्रव्य प्रवेश करनेकूं अशक्त है, मेरा सर्वोत्कृष्ट चैतन्य स्वरूप है, अन्य कोऊ इसमें प्रवेश नही करि सके है। अर मेरा चैतन्य रूप कोऊ हरनेकूं समर्थ नही है, मेरा स्वरूप अक्षय अनंतज्ञानस्वरूप अविनाशि धन है, तिसकूं चोर कैसें ग्रहण करे? इसमें कोऊ अन्यद्रव्यका प्रवेशही नही, ज्ञान—दर्शन—सुख—वीर्यरूप मेरा अविनाशी धन कोऊ हरनेकूं समर्थ नही। ऐसैं अनुभव करता निःशंक निर्भय अपने ज्ञानस्वभावमें तिष्ठते सम्यग्दृष्टीकै अगुप्तिभय नही होय है॥

अब अकस्माद्भयकूं निराकरण करे हैं ॥ मेरा स्वरूप स्वभावहीतैं शुद्ध है, ज्ञानस्वरूप है, अनादिका है, अविनाशी है, अचल है, एक है, इसमें दूजेका प्रवेश नही है, चैतन्यका विलासरूप समस्तद्रव्यनिका जामैं प्रकाश हो रह्या है, अर समस्तविकल्परहित अनंतसुखका स्थान है, तिसमैं अचानक कुछ होना नही है । तातैं ज्ञानी सम्यग्दृष्टि अपना स्वरूपमें अनंतानंत काल होतैंहूं द्रव्यकृत भावकृत कुछहू उपद्रव होना नही माने है । केवल ऐसा साहस सम्यग्दृष्टि जीवही करनेकूं समर्थ है । जो भयकरिकैं चलायभान जो त्रैलोक्य तानैं छांडी है प्रवृत्ति जातैं ऐसा वज्रपातकूं पडतैंहू अपने स्वभावकी निश्चलताकरिकै समस्तही शंकाकूं त्यागिकरिकै अर अपना स्वरूपकूं अविनाशी ज्ञानमय जानत है अर ज्ञानतैं नही च्युत होय है ॥ भावार्थ—ऐसा वज्रपात पडै ! जो लोक चालते हालते खाते पीते जैसेके तैसे अचल रहिजाय ऐसा भयंकर कारण होतैंहू जो अपना ज्ञानमय आत्माकूं अविनाशी जानता भयकूं नही प्राप्त होय, तिसकै निःशंकित अंग होय है ॥

बहुरि इंद्रियजनित सुखमें जाकै अभिलाष नही, धर्मसेवनकरि धर्मके फलकूं नही चाहै, सो निष्कांक्षित गुण है। जातैं सम्यग्दृष्टीकूं इंद्रियनिके विषयजनित सुख दुःखरूप भासे हैं । कैसे हैं विषयनिके सुख ? कर्मके परवशी हैं, पुण्यकर्मका उदय होइ तदि विषय मिले हैं, बहुरि मिलै तोहू थिर नही हैं—अंतसहित हैं, बहुरि बीचिबीचि इष्टवियोगादिक अनेक दुःखनिके उदयकरि सहित हैं, पापका बीज हैं । ऐसैं इंद्रियजनित सुखमें वांछाका अभाव सो निष्कांक्षित अंग है॥

बहुरी रोगी दरिद्री देखि ग्लानि नही करै, तथा आपकै अशुभ कर्मका उदय देखि ग्लानि नही करै तथा पुद्गलनिकी मलिनता देखि ग्लानि नही करै, जातैं देह तो रोगमय है अर कर्मके उदयकी अनेक परिणति हैं, पुद्गलनिके नाना परिणमन हैं, इनके परिणमन देखि रागद्वेषकरि परिणामकूं मलीन नही करै, ताकै निर्विचिकित्सा अंग होइ॥

बहुरि जो भयतैं लज्जातैं लाभतैं हिंसाके आरंभकूं धर्म नही मानै अर जिनेंद्रकी आज्ञामैं लीन हुवा मिथ्यादृष्टि एकांतीनिका चलायमान कीया तत्त्वतैं नही चलै, सो अमूढदृष्टि नामा अंग है॥ तथा मिथ्यादृष्टीनिका प्ररूप्या एकांतरूप कुमार्ग तथा कुमार्गीनिका आचरण कुमार्गीनिका ज्ञान ध्यान तप त्याग देखि मन-वचन-कायकरि प्रशंसा नही करै। तथा मंत्र यंत्र तंत्र पूजा मंडल होम यज्ञादिककरि तथा व्यंतरादिकदेवनिकी पूजा करी तथा गृहादिकनिकी पूजादिककरि अशुभकर्मका अभाव होना अर साताका उदय होनेका श्रद्धान नही करै। जातैं अशुभकर्मका अभाव होना अर शुभकर्मके देनेकूं त्रैलोक्यमैं कोऊ समर्थ नही है। अपनें परिणामनिकरि बांध्या हुवा कर्म आपके शुद्ध परिणाम करिही निर्जरै, और कोऊ दूरि करनेकूं समर्थ नही है। ऐसा दृढ श्रद्धान सो अमूढदृष्टि है॥

बहुरि जो परके दोषकूं आच्छादन करै—ढाकै अर अपना भला कर्तव्य तिसका प्रकाश नही करै। जातैं संसारी जीव रागद्वेषके वशीभूत हैं, अपना आपा भूलि रहे हैं, परमार्थतैं पराङ्मुख हैं, स्वरूपका अवलोकनरहित हैं, ज्ञानावरणकरि आच्छादित हैं तातैं परवश हुवा दोषरूप प्रवर्ते हैं, इनका दोष प्रकट कीये

अवज्ञा होयगी; तथा यो धर्ममें प्रवर्ते हैं, धर्मकी हास्य होयगी; तातैं परके दोषकूं ढाकै अर अपनी बडाई नही करै " मै केवलज्ञानरूप परमात्मरूप होइ विषयकषाननिमैं फसि रह्या हूं ! " ऐसैं आत्मनिंदा करै, अर जैसैं सर्वज्ञभगवान् देख्या है तैसैं होयगा ऐसैं भवितव्यभावनामैं रत होइ, ताकै उपगूहन अंग होइ है ॥

कोऊ पुरुष रोगकरि वा उपसर्गकरि वा क्षुधातृषाकी वेदनाकरि वा व्रत पालनेमें शिथिलताकरि तथा असहायताकरि तथा निर्धनताकरि मुनिधर्मतें वा श्रावकधर्मतैं चलायमान होता होय ताकूं धर्मोपदेश देनेकरि तथा शरीरकी टहल चाकरी करि वा औषध भोजनपान देनेकरि वा निराकुल वसतिका वा गृहादिक देनेकरि वा उपद्रवादिक दूरि करनेकरि धर्ममें थंभ करै, धर्मतें चलवा नही दे, ताकै स्थितीकरण अंग है ॥

बहुरि जो धर्मविषैं वा धर्मात्मा पुरुषविषैं वा धर्मायतन कहिये जिनमंदिर जिनप्रतिमाविषैं वा सत्यार्थधर्मके प्ररूपक जिनेंद्रका आगमके पठनविषैं श्रवणविषैं उपदेश देनेविषैं जिनकै अत्यंत प्रीति होय ताकै वात्सल्य अंग होय है ॥

संसारी जीवनिकै अपनी स्त्रीविषैं वा पुत्रादिककुटुंबविषैं वा धनपरिग्रहादिकविषैं तीव्र अनुराग लगि रह्या हैं, धर्ममें धर्मात्मापुरुषनिमें राग नही है, सत्यार्थ स्वपरका निर्णय करि जो परमधर्मकूं जाणै चतुर्गतिका दु:खसूं भयभीत होय, अर जाकूं विषय विषसमान भासै अर आत्मिकसुख जाकूं सुख दीखै, ताकै धर्ममें वात्सल्य होय है ॥

बहुरि अपने आत्माके मांहि अनादिके मिथ्यात्वादिक मल रागादिक कामादिक मल तिनकूं दूरि करि अपने आत्माका प्रभाव रत्नत्रय धारणकरि प्रकट करना, सो प्रभावना नाम अंग है॥ तथा दान तप जिनपूजा त्याग इत्यादिकरि जिनधर्मका प्रभाव जगतमें प्रकट करै, मिथ्यादृष्टीहू देखि प्रशंसा करै " जो, ऐसा शील जैनी-हीकै होय, जिनका निर्लोभपणा, दयालुपणा, दातारपणा, क्षमावान्-पणा, तथा त्याग, वैराग्य, शील, संयम, सत्य इत्यादिक देखि बालगोपालहू महिमा करै, " ताकै प्रभावना अंग होइ है॥ जो महाव्रत अणुव्रत धारै, सो प्राण जातैंहू हिंसा, झूठ, परधनहरण, कुशील, परिग्रहमें नही प्रवृत्ति करै ऐसा धर्मका महिमा प्रकट दिखावै, अपनी मन–वचन–कायकी प्रवृत्ति करि धर्मकी निंदा नही करावै, अर अभ्यंतर अपने आत्माकूं मिथ्यात्वादिकनितैं मलिन नही होने देवै, ताकै प्रभावना नाम अंग होय है॥ ऐसैं सम्यक्त्वके अष्ट गुण कहे॥ कार्तिकेयस्वामीनें ऐसैं कह्या है—

जो ण कुणादि परतत्तिं। पुणुपुणु भावेदि सुद्धमप्पाणं॥
इंदियसुहणिरवेक्खो। णिस्संकाई गुणा तस्स॥१॥

अर्थ—जो जीव परकी निंदा नही करे है, अर वारंवार रागादिरहित शुद्ध आत्माकूं भावे है—अनुभवे है, अर इंद्रियजनित-सुखमें जिनकै वांछाका अभाव है, तिनकै निःशंकितादि गुण जानिये है॥

औरहू प्रशम, संवेग, अनुकंपा, आस्तिक्य ये सम्यक्त्वके लक्षण हैं॥ संवेग, निर्वेग, निंदा, गर्हा, उपशम, भक्ति, अनुकंपा

ये सम्यक्त्वके अष्ट गूण हैं ॥ धर्ममें अत्यंत अनुराग होना, सो संवेग है ॥ संसार देह भोगनितैं विरक्तता, सो निर्वेग है ॥ आपका दोष चिंतवन करि अंतःकरणमें आपकी निंदा करनी, अपना प्रमादीपणा विषयानुरागीपणा कषायनिके आधीनपणा संयमरहितपणा देखि आपाकूं निंदना, सो निंदा है ॥ गुरुनिके निकट अपने दोष प्रगट करि आपकी निंदा करना, सो भक्ति है ॥ बहुरि धर्मात्मा जीवनिमैं प्रीति करना, सो अनुकंपा है ॥ जाकै सम्यग्दर्शन होइ ताकै ये अष्टगुण प्रकट होयही हैं ॥ ऐसैं सम्यक्त्वका संक्षेप वर्णन कीया ॥ सम्यग्दर्शनसहित एक देशव्रतकूं धारण करि मरण करै है सो बाल पंडित मरण है अब गृहस्थकै देशव्रत कैसें है, सो कहे हैं ॥ गाथा—

पंच य अणुव्वयाइं । सत्त य सिक्खखाउ देसजदिधम्मो ॥
सव्वेण य देसेण य । तेण जुदो होदि देसजदी ॥२०७५॥

अर्थ—पंच अणुव्रत अर सप्त शिक्षाव्रत ये बारा व्रत देशयति जो एकदेशव्रती ताका धर्म है । जो श्रावक ये बारा व्रत समस्तपणाकरि वा इनिका एकदेशकरि जो युक्त होय, सो श्रावक एकदेश यति वा एकदेश संयमी वा व्रती होइ है ॥ अब पंच अणुव्रत तिनके नाम कहे हैं ॥ गाथा—

पाणिवधमुसावादा । दत्तादाणपरदारगमणेहिं ॥
अपरिमिदिच्छादो वि य । अणुव्वायाइं विरमणाइं ॥७६॥

अर्थ—हिंसा, असत्य, अदत्तादान, परदारागमन परिमाणरहित परिग्रह इनि पंच पापनिका एकदेशत्याग, सो पंच अणुव्रत है ॥ अब तीन प्रकार गुणव्रतके नाम कहे हैं ॥ गाथा—

जं च दिसावेरमणं । अणत्थदंडेहि जं च वेरमणं ॥
देसावगासियं पि य । गुणव्वयाइं भवे ताइं ॥ ७८ ॥

अर्थ--जो मरणपर्यंत दश दिशानिमैं गमनादिककी मर्यादा करना, सो दिग्विरति व्रत है । अनर्थदंडनिका त्याग, सो अनर्थदंडविरति व्रत है । अर कालकी मर्याद करि क्षेत्रमें गमन करनेकी मर्यादा, सो देशावकाशिक है । ऐसें तीन गुणव्रत हैं ॥ अब च्यारिप्रकार शिक्षाव्रतनिकूं कहे हैं ॥ **गाथा**—

भोगाणं परिसंखा । सामाइयमतिहिसंविभागो य ॥
पोसहविधी य सव्वो । चदुरो सिक्खाउ वुत्ताउ ॥ ७८ ॥

अर्थ—भोगोपभोगकी मर्यादा, सो भोगोपभोगपरिमाणव्रत है । सामायिककी प्रतिज्ञा करना, सो सामायिक नाम शिक्षाव्रत है । च्यारि पर्वनिमैं उपवासादिक प्रोषध विधि करना, सो प्रोषधोपवास नामा शिक्षाव्रत है । ऐसैं च्यारि शिक्षाव्रत कहे ॥ पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, च्यारि शिक्षाव्रत ऐसैं ये बारह व्रत गृहस्थ अवस्थामैं श्रावककै कहे ॥

इहां ऐसा विशेष जानना—सम्यग्दर्शनका धारक जीवकै समस्त व्रतादिक होइ हैं । तातैं जो पहली जिनेंद्रभाषित सूत्रकी आज्ञाप्रमाण तत्त्वार्थनिका श्रद्धानस्वरूप सम्यग्दर्शन धारण करिकै; अर जो जूवा, मांस, मद्य, वेश्या, शिकार, चोरी, परस्त्री इन सात व्यसनका त्याग; अर पंच उदुंबरफलादिकका त्याग; तथा जिनमैं त्रसजीवनिकी उत्पत्ति ऐसा बीजफलादिकका त्याग करे है; सो दर्शनप्रतिमाका धारक श्रावक हैं ॥

बहुरि जो विशुद्धता वधि जाय तो व्रत नामा दूसरी प्रतिमा, तिसमैं बारा व्रत धारण करे है। तिन व्रतनिका ऐसा संक्षेप है— जो अपनी बुद्धिपूर्वक नियम करना, सो व्रत है। तिनमैं जो अपने संकल्पतैं त्रसजीवनिकी हिंसा करनेका त्याग करै; मन वचन कायके संकल्पकरि त्रसजीवनिका घात नही करै; अन्यतें मन वचन कायकरिकैं नही करावै; अन्य करता होय तिसकूं मन वचन कायकरि भला नही जानै—प्रशंसा नही करै; रोगादिककी पीडाकरि वा धनके लोभकरि वा भयकरि, वा लज्जाकरि, कदाचित् अपना प्राण जाय तोहू वे इंद्रियादिक त्रसका घात नही करै; जातें गृहस्थकै एकेंद्रियकी हिंसाका त्याग तो बणि सकै नही; जाकी चूला उखणी, बुवारी, परीडा, अर द्रव्यका उपार्जन ये छ कर्म पापहीके हैं, तातैं पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, पवनकाय, वनस्पतिकाय इनिके आरंभमैं तो अत्यंत घटाय यत्नाचारपूर्वक प्रवर्तन करै; अर संकल्पी त्रसहिंसाका त्याग करै; अर आरंभमें यत्नाचारपूर्वक प्रवर्ततैंहू जो कदाचित् विराधना होइ तो आपकै संकल्प है नही, कोऊ लाख धन देकरि एक कीडाकूं मरावै, वा भयकरि मरावै, तो प्राण जावो! वा धन जावो! परंतु अपने संकल्पतैं एक जीवकूं नही मारै; ताकै अहिंसा नामा अणुव्रत होय है॥ जातैं रागादिकनिकी उत्पत्ति सो हिंसा है, अर रागादिकनिकी उत्पत्तिका अभाव, सो अहिंसा है। जो वीतरागताकूं नहि विस्मरण होता निरंतर यत्नाचाररूप प्रवर्तै अर दयाधर्मकूं एक क्षण विस्मरण नही होय, ताकै अहिंसा नाम अणुव्रत है॥

बहुरि जो हिंसाके करनेवाले वचन नही बोलै, वा कर्कश वचन नही कहै, वा अन्यकै दुःख उत्पन्न करनेवाला सत्य वचनहू

नही कहै, अन्यकूं असत्यवचन नही बुलावै, तथा जो वचन कहै सो समस्त छ कायके जीवनिके हितरूप कहै अर प्रमाणीक कहै, अर समस्त जीवनिकै संतोष करनेवाला वचन कहैं, अर धर्मका प्रकाश करनेवाले वचन कहै, ताकै सत्य नामा अणुव्रत होइ है ॥

बहुरि विनादिया धनका ग्रहण करना, सो चोरी है। यातैं कोऊ आपमें धन स्थाप्या होइ, वा कोऊ नगर ग्राम उपवनमें पड्या होइ, वा जमी मैं पड्या होइ, वा कोऊ भूमीमैं पटकि गया होइ, वा आपकूं सोपि भूलि गया होइ, ऐसा परधनका जो त्याग करै, सो अचौर्य नामा अणुव्रत है। तथा बहुत मोलकी वस्तु अल्पमोलमें नही ग्रहण करै, अर गिर्‍या, पड्या, भूल्या, विस्मरण हुवा परके वस्तूको नही ग्रहण करै तथा अल्प लाभमें संतोष करै, ताकै अचौर्य नामा अणुव्रत है॥

बहुरि जो अपनी विवाहिता स्त्रीविना अन्य समस्त स्त्रीनिका त्याग करै, ताकै ब्रह्मचर्य नाम अणुव्रत है॥ बहुरि जो धनधान्यादिक समस्त परिग्रहका परिमाण करि तिसतैं अधिकमें तृष्णाका अभाव करि संतोष धारण करै, ताकै परिग्रहपरिणाम नामा अणुव्रत होय है॥ ऐसैं पंच अणुव्रत कहे ॥

बहुरि लोभके नाशके अर्थि जो यावज्जीव दश दिशानिका परिमाण, सो दिग्विरतिव्रत है॥ बहुरि जिसतैं आपका कार्य तो कुछहू सिद्ध नही होय अर जातैं नित्य पापकर्मका बंध होइ, सो अनर्थदंड अनेकप्रकार है। तथापि सामान्यपणाकरि पंच भेद कहे हैं। पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुतिसेवन, प्रमादचर्या ये पंच-

प्रकार अनर्थदंडके नाम हैं। तिनमें जो खेती करनेका, पशु पालनेका, पापके विणजका, तिर्यंच मनुष्यनिकूं मारनेका, दृढ बांधनेका, पुरुषस्त्रीनिके संयोगका, तथा छह कायके जीवनिका घात जातैं होय ऐसा उपदेश करना, सो पापोपदेश नामा अनर्थदंड है ॥

बहुरि हिंसाके उपकरण जे खड्ग, बाण, छुरी, कटारी, फावडा, खुरपा, कुंदाल, विष, अग्नि, रस, जेवडा, बेडी, सांकल, चाबका, जाल, पींजरा इत्यादिकका देना, सो हिंसादान नामा अनर्थदंड है। तथा मार्जार, कूकरा, तीतर, कूकडा इत्यादिक मांसभक्षी जीवनिका पालना तथा आयुधनिका बेचना, लोहका विणज करना, तथा लाख खलि इत्यादिक "जिवनिकी हिंसा जिनतें प्रवर्तैं तिनका" विणज व्यवहार करना; सोहू हिंसादान नामा अनर्थदंड है॥

बहुरि जो रागी द्वेषी हुवा अन्यजीवनिके स्त्रीपुत्रादिकनिका मरण चाहना; तथा अन्यजीवनिकै राजाकरि कीया तीव्रदंड, वा सर्वस्वहरण, वा चौरादिककरि धनका नाश, तथा जगतमैं अपवाद, कलंक इत्यादिककी वांछा करना; तथा अन्यजीवनिका अंगका छेद, बुद्धीका नाश, मारण, ताडनकी चाह करना; परका उदय देखि क्लेशित होना, अन्यकै आपदा आजाय वा अपमानादिक होय तदि आनंद मानना; सो अपध्यान नामा अनर्थदंड है ॥ तथा अन्य मनुष्य तिर्यंचनिकी राडि कलह देखना वा देखिकरि हर्ष मानना, अन्यजीवनिके दोष ग्रहण करना, परकी धन संपदा देखि वांछा करना, अन्यकी स्त्रीका देखनेमें अनुराग करना, आपका अभिमानकी वृद्धि चाहना, परका अपमान चाहना इत्यादिक अपध्यान नामा अनर्थदंड है ॥

बहुरि जिस शास्त्रमें हिंसामैं धर्म कह्या; तथा जिनमैं भंडकथा, कामकथा, वशीकरण, कपट, छलवर्णन, तथा युद्धशास्त्र तथा रागद्वेष मिथ्यात्वके वधावनेवारे खोटे शास्त्रनिका श्रवण करना; सो दुःश्रुति नाम अनर्थदंड है ॥ बहुरि जो प्रयोजनविना दोडना, कूटना, जलकूं सींचना, काटना, विनाप्रयोजन अग्निका बधावना, पवनका उडावना, बनस्पतीका छेदना इत्यादिक निष्फलव्यापार—प्रवृत्ति करना, सो प्रमादचर्या नामा अनर्थदंड है ॥ ऐसें पंचप्रकारके अनर्थदंडनिका छोडना सो अनर्थदंडत्याग नामा दूसरा गुणव्रत है ॥

बहुरि जो यावज्जीव दशदिशामैं गमनका प्रमाण कीया, सो तो दिग्विरतिव्रत है। तिसमैं जो दिनप्रति मर्याद करै—जो मैं आजि इतनी दूरही गमन करूंगा ऐसें जो कालकी मर्याद करि गमनका परिमाण निति करै--ताकै देशावकाशिकाशिकव्रत कहिये हैं ॥ बहुरि अपनी भोगोपभोगसंपदाकूं जाणिकरिकै अर रागभावके घटावनेकूं जो इंद्रियनिके विषयनिका परिमाण करै, ताकै भोगोपभोग नामा शिक्षाव्रत है ॥ तिनमैं मद्य, मांस, मधु, नवनीत जो लूण्यो, कंद, मूल, हलद, आदो, निंब, केवडा, केतकी इत्यादिकनिके पुष्प इनिमैं तो नियम नही; ये तो बहुत त्रसजीवनिका स्थान कहे, तातैं यावज्जीव त्याग करना उचित है। अर जो आपकै उदरशूलादिक दुःख करनेवाला जो प्रकृतिविरुद्ध है, ताका त्याग करै। जातैं जो अपनै दुःख होना, रोगका बधना, मरण होना, इनकूं नही गिणता जिव्हा इंद्रियका लोलपी होइ प्रकृतिविरुद्ध आहार करै है, ताकै तीव्ररागजनित अशुभकर्मका बंध होय है ॥

बहुरि जिसमैं जीवनिकी विराधना तो नही, परंतु उत्तमकुलमैं ग्रहणयोग्य नही, ते अनुपसेव्य हैं । जातैं शंखचूर्ण, गजके दंत, औरहू हाड, गायका मूत्र, ऊंटका दुग्ध, तांबूलका उद्गाल, मुखकी लाल, मूत्र, मल, कफ, तथा उच्छिष्ट भोजन, तथा अशुद्धभूमिमैं पड्या भोजन, तथा म्लेच्छादिकनिकरि स्पर्श्या भोजन, पान, तथा अस्पृश्य शूद्रका ल्याया जल, तथा शूद्रादिकका कीया भोजन, तथा अयोग्य क्षेत्रमें धर्‍या भोजन, तथा मांसभोजन, तथा नीचकुलके गृहनिमैं प्राप्त भया भोजन जलादिक अनुपसेव्य हैं । यद्यपि प्रासुक होइ हिंसारहित होइ तथापि अनुपसेव्यपणातैं अंगीकार करनेयोग्य नही है बहुरि विकार करनेवाला भेष, वस्त्र, आभरण, नीच पुरुषनिकै योग्य, रागकारी कामादिकके बधावनेवाले चित्राम, गीत, नृत्य, भंडवचन श्रवण इत्यादिहू अनुपसेव्य हैं ।। तातैं अनिष्ट अर अनुपसेव्यकूं वर्जन करिकै जो न्यायोपार्जित त्रसजीवनिकी विराधनारहित भोजनादिक भोग अर वस्त्रादिक उपभोग, तिनमैं प्रमाण करि अंगीकार करै, तिसकै भोगोपभोगपरिमाण नाम व्रत है.

जो एकवार भोगनेमें आवै, सो तो भोजन, जल, पुष्प, गंध विलेपनादिकनिकूं भोग कहिये हैं । अर जे वस्त्र, आभरण, स्त्री, शयन, आसन, असवारी, महल, इत्यादिक वारंवार भोगनेयोग्य ते उपभोग हैं । तिन भोगोपभोगका यावज्जीव त्याग करना, ताकूं यम कहिये हैं। अर जो एकदिन, दोयदिन, वा रात्रि, वा पक्ष, मास, चतुर्मास, एक वर्ष इत्यादिक कालकी मर्यादारूप त्याग करना, सो नियम है । तिनमें अयोग्य अनुपसेव्य त्रसनिका घात

करनेवाले भोजनका तो यावज्जीव त्याग करी यमही करै। अर योग्यविषयनिमैं कालकी मर्यादपूर्वक त्याग करि नियम धारै ॥ ऐसैं समस्त पंच इंद्रियनिके विषयनिमैं यमनियम करै, सो भोगोपभोगपरिमाण नामा शिक्षाव्रत है ॥

बहुरि जिनकै पुण्यके उदयतैं नानाप्रकारकी भोगोपभोगसामग्री घरमें मौजूद तिष्ठे है, तिनमैंतैं अल्प ग्रहण करि बहुतका त्याग करे हैं अर आगामी कालमें भोगोपभोगकी वांछारहित हैं अर वर्तमान कालमें कर्मके उदयतैं भोगनेमें आवे है, तिनमैं अति उदासीन हुवा मंदरागसहित भोगे हैं, तिनके व्रत इंद्रनिकरि प्रशंसायोग्य समस्त कर्मकी स्थितिका छेद करे हैं ॥

बहु समस्त चेतन अचेतन द्रव्यनिविषैं रागद्वेषको त्याग करि साम्यभावकूं आलंबन करिकै अर प्रातःकाल अर संध्याकालके विषैं अविचल मन—वचन—कायकूं करि अवश्य नित्यही सामायिकका अवलंबन करना, सो सामायिक नामा शिक्षाव्रत है। सो सामायिक करनेके अर्थि क्षेत्रशुद्धता देखनी। जहां कलकलाट शब्द नहीं होय, जहां स्त्रीनिका आगमन नहीं होय, नपुंसकनिका प्रचार नहीं होय, तिर्यंचनिका संचार नहीं होय, वा गीत नृत्य वादित्रादिकनिका शब्दरहित कलह विसंवादरहित होय, तथा जहां डांस मांछर मांखी बीछू सर्पादिकनिकी बाधारहित, शीत उष्ण वर्षा पवनादिकके उपद्रवरहित, एकांत अपने गृहमें निराला प्रोषधोपवास करनेका स्थान होइ, वा जिनमंदिरमें वा नगरग्रामबाह्य वनका मंदिर वा मठ मकान सूना गृह गुफा बाग इत्यादिक बाधारहित क्षेत्र होइ तहां सामायिक करनेकूं तिष्ठै ॥

बहुरि प्रातःकाल वा मध्याह्नकाल तथा संध्याकाल इन तीन कालनिमैं समस्त पापक्रियाको त्याग करिकै सामायिक करै। इतनैं कालपर्यंत मैं समस्त सावद्ययोगका त्यागी हूं; इनि कालनिविषैं भोजन, पान, विणज, सेवा, द्रव्योपार्जनके कारण लेण देण, विकथा आरंभ, विसंवादादिक समस्तका त्याग करै॥ सामायिकके अर्थि काल दे. देवै तिन कालनिमैं अन्यकार्यका त्याग करै॥ बहुरि सामायिकके अवसरमें आसनकी दृढता करै। जो पूर्वैं अपनै स्थिर आसनका अभ्यास नही करि राख्या होय तासू लौकिक कार्यही नही होय तो परमार्थका कार्य कैसैं बनै! तातैं आसनकरि अचल होइ तिसहीकै सामायिक होय है॥

बहुरि सामायिकका पाठ वा देववंदना वा प्रतिक्रमणादिकके पाठके अक्षरनिमैं, वा इनके अर्थमें, वा अपने स्वरूपमें, वा जिनेंद्रके प्रतिबिंबमें, वा कर्मनिके उदयादिकस्वभावमें चित्तकूं लगाय, अर इंद्रियनिका विषयनिमैं प्रवृत्तिकूं रोकिकरिकै मन–वचन–कायकी शुद्धता करि सामायिक करै तथा शीत उष्ण पवनकी बाधा, डांस, मांछर, मक्षिका, कीडा, कीडी, बीछू, सर्पादिककरि आया परीषहतै चलायमान नही होइ; तथा दुष्ट व्यंतरदेवादिक अर मनुष्य अर तिर्यंच अर अचेतनकृत उपसर्गकूं समभावनिकरि सहै चलायमान नही होय–परिणाममैं सकंप नही होय–देह चल जाय तोहू जिनका परिणाम क्षोभकूं नही प्राप्त होइ, ताकै सामायिक नाम शिक्षाव्रत होय है॥

बहुरि जो अष्टमी चतुर्दशी एकमासमें च्यारि पर्व तिनमैं उपवास ग्रहण करै; च्यारिप्रकारका आहारका त्याग, अर स्नान,

विलेपन, आभूषण, स्त्रीनिका संसर्ग, अत्तर, फुलेल, पुष्प, धूप, दीप, अंजन, नाशिकामैं सूंघनेकी नाश, तथा विणज व्यवहार, सेवा, आरंभ, कामकथा इत्यादिकनिका त्याग करि धर्मध्यानसहित रहै अर च्यारिप्रकारका आहारका त्याग करै; ताकै प्रोषधोपवास होय है ॥

तथा स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा नाम ग्रंथमैं ऐसैं कह्या है—जो एकवार भोजन करै वा नीरस आहार वा कांजिका करै, ताकैहू प्रोषधोपवास नामा शिक्षाव्रत है ॥ बहुरि जो उत्तमपात्र जो मुनि अर मध्यमपात्र अणुव्रती गृहस्थ अर जघन्यपात्र अव्रतसम्यग्दृष्टि गृहस्थ तिनके अर्थि जो भक्तिसहित दान करे है, ताकै अतिथिसंविभाग व्रत है ॥ आहारदान, औषधदान, ज्ञानदान, वसतिकादान ये च्यारिप्रकार दान करना, सो भक्तिपूर्वक करना। राग, द्वेष, असंयम, मद, दुःख, भयादिक जिस वस्तुतैं नही होय; सो वस्तु संयमीनिके अर्थि दान देनेयोग्य है ॥ वैयावृत्य अर दान एक अर्थ है । जो तपस्वीनिका शरीरका टहल करना, सो वैयावृत्य है; तथा अरहंत भगवानका पूजन सो अर्हद्वैयावृत्य है; जिनमंदिरकी उपासना करना वा उपकरण चमर छत्र सिंहासन कलशादिक जिनमंदिरके अर्थि देना, सो समस्त जिनमंदिरका वैयावृत्य है; सो महान् दान है । सो बडा आदरपूर्वक करना । ऐसैं दानका प्रकार समस्तही वैयावृत्यमें जानना ॥ ऐसैं संक्षेपकरि श्रावकके बारह व्रत कहे वा इनके अतीचार कहे सो श्रावकाचारादिक ग्रंथनिमैं प्रसिद्ध है । इनि बारहप्रकार व्रतानिकूं धारै सो दूसरी पैडीका धारक व्रती श्रावक है ॥

जातैं जो सम्यग्दर्शनकरि शुद्ध हुवा संसार देह भोगनितैं विरक्त, अर पंचपरमगुरुका शरण ग्रहण करता, सप्तव्यसनका त्याग करि समस्त रात्रिभोजनादिक अभक्ष्यका त्याग करै, ताकै दर्शन नामा प्रथम स्थान है ॥ बहुरि पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, च्यारि शिक्षाव्रत इनि बारहव्रतनिकूं धारण करै सो व्रती श्रावक दूसरा पदका धारक है ॥ बहुरि तीनकाल साम्यभाव धारण करि सामायिकका नियम करै, सो सामायिक पदवीका धारक तीजा भेद है ॥ बहुरि एकएक मासविषैं च्यारिच्यारि पर्वविषैं जो अपनी शक्तीकूं नहीं छिपाय करिकै जो प्रोषधापवास धारण करै, ताकै चोथा प्रोषधस्थान है ॥ याका विशेष ऐसा—

जो सप्तमी वा त्रयोदशीके दिन मध्याह्नकालपहली भोजन करिकै, अर पाछे अपराह्नकालविषैं जिनेंद्रके मंदिरमें जायकरिकै, अर मध्याह्नसंबंधी क्रिया करिकै, च्यारिप्रकारके आहारका त्याग करि उपवास ग्रहण करै, अर समस्त ग्रहके आरंभका त्याग करि जिनमंदिरमें वा प्रोषधोपवासके गृहमें वा वनके चैत्यालयमें वा साधुनिके निवासमें समस्त विषयकषायका त्याग करिकै सोलह प्रहरपर्यंत नियम करै, तहां सप्तमी त्रयोदशीका अर्धदिन धर्मध्यान स्वाध्यायतैं व्यतीत करि अर संध्याकालसंबंधी सामायिक वंदनादिक करि रात्रिनैं धर्मचिंतन धर्मकथा पंचपरमगुरुके गुणनिका स्मरणादिककरि पूर्ण करिकै, अर अष्टमीचतुर्दशीके प्रातःकालमें प्रभातसंबंधी क्रिया करिकै, अर समस्तदिवसकूं शास्त्रके अभ्यासतैं व्यतीत करिकै, बहुरि संध्याकालमें देववंदना करिकै, अर रात्रिकूं

तैसैंही धर्मध्यानतैं व्यतीत करिकै, प्रातःकाल देववंदना करिकै, अर पश्चात् पूजनविधिकरि अर पात्रकूं भोजन कराय करिकै जो पारणा करै, ताकै प्रोषधोपवास होय है ॥ एकहू निरारंभ उपवास उपशांत भया जो करे है, सो बहुतप्रकारका चिरकालतैं संचय कीया कर्मकों लीलामात्रकरिकै निर्जरा करे है। अर जो पुरुष उपवासके दिनहू आरंभ करे है, सो केवल अपने देहकूं शोषण करे है अर कर्मका लेशहू नही नष्ट करे है ॥ ऐसैं प्रोषध नामा चौथा स्थान है ॥

बहुरि जो मूल फल पत्र शाक शाखा पुष्प कंद बीज कूंपल इत्यादि अपक्व सचित्त नही भक्षण करै, सो सचित्तका त्याग नामा पंचम स्थान है। जातैं अग्निमैं तप्त कीया, तथा अग्निकरि पकाया, तथा शुष्क भया, तथा आंमिली लूणकरि मिल्या हुवा द्रव्य, तथा जंत्र काष्ठपाषाणादिकके अनेकप्रकारके उपकरण तिनिकरि छेद्या जे समस्त द्रव्य, ते प्रासुक हैं, सो भक्षण करनेयोग्य हैं ॥ जो त्यागी आप सचित्त भक्षण नही करै, ताकूं अन्यके अर्थि सचित्त भोजन करावना युक्त नही है। जातैं भक्षण करनेमें अर करावनेमें कुछ भी विशेष नही है। जो पुरुष सचित्तवस्तुका त्याग करे है, सो बहुत जीवनिकी दया धारण करे है अर जो सचित्तका त्याग कीया, सो कापुरुषनिकरि नही जीती जाय ऐसी जिव्हाकुं जीते है अर जिनेंद्रका वचन पालत है ॥ ऐसैं सचित्तके त्यागीका पंचम स्थान कह्या ॥

बहुरि जो अन्न पान खाद्य स्वाद्य ऐसैं च्यारिप्रकारका भोजन रात्रिविषैं करै नही, करावै नही, अन्य भोजन करै ताकी प्रशंसा करै नही, तिसकै रात्रिभोजनत्याग नामा छट्टा स्थान है ॥ जो रात्रिभोजनका त्याग करिकै अर रात्रिके विषैं आरंभकाहू त्याग करे है; सो एकवर्षमें छह महीनेंके उपवास करे है ॥ बहुरि जो अपनी विवाही स्त्रीकाहू त्याग करि स्त्रीमात्रतैं विरक्त हुवा गृहमें तिष्ठै है अर अपनी स्त्रीतैं रागरूप कथा तथा पूर्वे भोगे भोगनिकी कथाकूं वर्जिकरिके कोमलशय्या आसन विकाररूप वस्त्र आभरणके त्याग करिकै स्त्रीनितैं भिन्नस्थानमें शय्या आसन ब्रह्मचर्यव्रत पाले है, ताकै ब्रह्मचर्य नामा सातवा स्थान होइ है ॥

बहुरि जो सेवा कृषि वाणिज्य शिल्पि इत्यादिक धन उपार्जन करनेंके कारण तथा हिंसाके कारण आरंभकूं त्यागिकरि, अर अपने गृहमें द्रव्य होय तिनका स्त्रीपुत्रकुटुंबादिकनिका विभाग करि, अर अपने योग्यकूं आप ग्रहण करि, अन्यमें ममता त्यागि नवीन उपार्जनका त्याग करि, अपने परिग्रहमें संतोष करि, जो अपने निकट द्रव्य राखि लीया ताकूं अन्न वा वस्त्रादिक भोगनिमें वा पूजा दान इत्यादिकमैं व्यतीत करता वा सज्जनादिकनिकूं देता वांछारहित काल व्यतीत करै, ताकै आरंभत्याग नामा अष्टमस्थान होय है ॥ इहां इतना विशेष जानना—जो आप अल्प धन अपने खाने पीने दानपूजादिकके निमित्त राख्या था, ताकूं कदाचित् चोर वा दुष्ट राजा वा दायियादार वा कपूतपुत्रादिक हरण करै, तो नींचा नही उतरै, " जो मेरा जीवनेका निमित्त धन था, सो जाता रह्या,

नवीन उपार्जनका मेरै त्याग है, अब मै कहां करूं ! कैसैं जीवुं ! ऐसैं अरतिकूं नहीं प्राप्त होय है, धैर्यका धारक धर्मात्मा विचारे है—यइ परिग्रह दोऊ लोकमें दुःखका देनेवाला है, सो मै अज्ञानी मोहकरि अंध हुवा ग्रहणकरि राख्या था, सो अब दैवनैं मेरा वडा उपकार कीया, जो, ऐसैं बंधनतैं सहज छूट्या" ऐसा चिंतन करता परिग्रहत्याग नामा नवमी पयडीकूं प्राप्त होय है, उलटा आरंभ करि परिग्रहग्रहणमें चित्त नही करे है, ताकै आरंभत्याग नामा आठमा स्थान होय॥

बहुरि जो राग द्वेष काम क्रोधादिक अभ्यंतर परिग्रहकूं अत्यंत मंद करिकै, अर धन धान्यादिक परिग्रहकूं अनर्थ करनेवाले जानि, बाह्यपरिग्रहतें विरक्त होइ करिकैं, शीत उष्णादिककी वेदना निवारणेके कारण प्रमाणीक वस्त्र तथा पीतल तामाका जलका पात्र वा भोजनका एक पात्र इनि विना अन्य सुवर्ण रूपा वस्त्र आभरण शय्या यान वाहन गृहादिक अपने पुत्रादिकनिकूं समर्पण करि, अपने गृहमें भोजन करताहू अपनी स्त्रीपुत्रादिक ऊपरि कोऊ प्रकार उजर नही करता, परमसंतोषी हुवा, धर्मध्यानतैं काल व्यतीत करै, ताकै परिग्रहत्याग नामा नवमा स्थान है॥

बहुरि गृहके कार्य जे धनउपार्जन वा विवाहादिक वा मिष्टभोजनादिक स्त्रीपुत्रादिकनिकरि कीये, तिनकी अनुमोदनाका त्याग करै वा कडवा खाटा खाये अलूणा भोजन जो भक्षण करनेमें आवै ताकूं खाये अलूणा बुरा भला नही कहै, ताकै अनुमतित्याग नाम दशमा स्थान है॥

बहुरि जो गृहकूं त्यागि मुनिनके निकटि जाय व्रत ग्रहण करि, समस्त परिग्रहका त्याग करि, कमंडलु पीछी ग्रहण करै, अर एक कौपीन राखै, तथा शीतादिकके परीषह निवारण करनेकूं एक वस्त्र राखै—जिसतैं समस्त अंग नही आच्छादन होय ऐसा वोछा वस्त्र राखै, वा अपने उद्देश्य कहिये आपके निमित्त कीया भोजनकूं नही ग्रहण करता समितिगुप्तीकूं पालता मुनीश्वरनिकी नांइ भिक्षा भोजन करै, मौनतैं जाय याचनारहित लालसारहित रस नीरस कडवा मीठा जो मिले तामैं मलिनतारहित शुद्ध भोजन करै, ताकै उद्दिष्ट आहारत्याग नामा ग्यारमा स्थान है ॥ ऐसैं ये ग्यारह प्रतिमा वर्णन करी, इनमैं जो जो स्थान होय सो सो पूर्वपूर्वसहित होय। इनि एकादशस्थाननिमैंतैं कोऊ स्थान धारि जो सल्लेखनामरण करै, सो बालपंडितमरण है ॥ सो अब कहे हैं ॥ गाथा—

आसुक्कारे मरणे अव्वे।छिण्णाए जीविदासाए ॥
णादीहि वा अमुक्को । पच्छिमसल्लेहणमकासी ॥२०७९॥

अर्थ—श्रावकव्रतके धारकका शीघ्र मरण आवता संता अर जीवितकी आशा नही छूटता संता वा अपने कुटुंबीनिकरि नही छूटते पश्चिम सल्लेखनाकूं करै ॥ भावार्थ—अणुव्रतीका मरन तो नजीक आजाय अर आपके जीवनमें आशा घटी नही अर स्त्री पुत्र कुटुंब बंधुजन आपकूं छोड्या नही—दीक्षा लेने दे नही, तदि अणुव्रतनिसहित गृहमें तिष्ठताही सल्लेखना करै । जातैं जो धर्मात्मा गृहस्थ मुनिपणा अंगीकार किया चाहै, सो अपने कुटुंबके जननिकूं ऐसैं पूछि अर बंधुसमूहकूं अर माता पिता स्त्री पुत्रादिकनितैं

आपकूं छुडावै, अपने बंधुसमूहकूं ऐसैं पूछैं—अहो ! इस हमारे शरीरके बंधुसमूहमें वर्तनेवाले आत्मा हो ! इस मेरे आत्माके माहि तिहारा कुछहू नही है, या निश्चयतैं तुम जानत हो, तातैं तुमारेताईं पूछत हूं, अबार हमारा आत्माकै ज्ञानज्योति उदय भया हैं, तातैं मेरा अनादिका बंधु जो मेरा आत्मा ताकूं प्राप्त भया चाहे है, मेरा शुद्धात्माही मेरा बंधु है; अन्य बंधुके देहका संबंध मेरे देहतैं है, मोतैं नाही। अहो ! इस शरीरके उत्पन्न करनेवाले जनकके आत्मा तथा अहो ! मेरे शरीरकूं उत्पन्न करनेवाली जननीके आत्मा ! मेरे आत्माकूं तुम नही उत्पन्न कीया है, या निश्चयकरिकै तुम जानत हो, तातैं अब मेरे आत्माकूं तुम छांडो। अब हमारा आत्माकै ज्ञानज्योति प्रकट भया है, तातैं आपका अनादिका माता पिता जो अपना आत्मा ताकूं प्राप्त होय है । अहो ! इस शरीरके आत्मा ! मेरे आत्माकूं तू नही रमावत है,ऐसैं तूं जाणि मेरा इस आत्माकूं छांडहू, अब हमारे आत्माकै ज्ञानज्योति प्रकट भया है, तातैं आत्मानुभूतीही जो मेरा आत्माकूं रमावनेवाली अनादिकी रमणी ताही प्राप्त भया चाहे है। अहो ! इस शरीरके पुत्रका आत्मा हो ! मेरा आत्मा तुमकूं नही उत्पन्न कीया है, या तुम निश्चयकरि जाणो, तातैं मेरे आत्माकूं छांड हू। अब मेरा आत्माकै ज्ञानज्योति प्रकट भया है, तातैं आपका आत्माही जो अनादितैं उपज्या अपना पुत्र, ताही प्राप्त हुवा चाहे है। ऐसैं बंधुजन वा पिता माता स्त्री पुत्रनितैं आपतैं आपकूं छुडावै। अर जो कुटुंबी जन आपकूं निराला नही होने दे, दिगंबरी दीक्षा नही धारण करने दे, तो अपने गृहविषैंही पश्चिमसल्लेखना करै ॥ गाथा—

आलोचिदणिस्सल्लो । सघरे चेवारुहित्तु संथारे ॥
जदि मरदि देसविरदो । तं वुत्तं बालपंडिदयं ॥ २०८० ॥

अर्थ—शल्यरहित हुवा पंचपरमेष्ठीके अर्थि आलोचना करि अपने गृहविषैंही शुद्ध संस्तरविषैं तिष्ठिकरि जो देशविरतिका धारी गृहस्थ मरण करै, सो बालपंडितमरण भगवान् परमागममें कह्या है ॥ गाथा—

जो भत्तपदिण्णाए । उवक्कमो वित्थरेण णिद्दिट्ठो ॥
सो चेव बालपंडिद- । मरणे णेउ जहाजोगो ॥ ८१ ॥

अर्थ—जो भक्तप्रतिज्ञामें संन्यासका विस्तार करिकै कथन कीया, सोही बाल पंडितमरणविषैं यथायोग्य जानना योग्य है ॥ गाथा—

वेमाणिएसु कप्पो- । वगेसु णियमेण तस्स उववादो ॥
णियमा सिज्झदि उक्क- । स्सएण सो सत्तमम्मि भवे ॥८२॥

अर्थ—तिस बालपंडितमरण करनेवालेका उत्पाद स्वर्गनिवासी वैमानिक देवनिविषैं नियमतैं होय है । अर सो समाधिमरणके प्रभावतैं उत्कृष्टताकरि सप्तम भवविषैं नियमतैं सिद्ध होय है ॥ गाथा—

इय बालपंडियं हो- । दि मरणमरहंतसासणे दिट्ठं ॥
एत्तो पंडिदपंडिद- । मरणं वोच्छं समासेण ॥८३॥

अर्थ—इसप्रकार बालपंडितमरण होय है । सो अरहंतके आगममें कह्या है ॥ तिस परमागमके अनुसार इस ग्रंथविषैं दिखाया । मैं मेरी रुचिविरचित नही कह्या है । भगवानके अनादिनिधन परमागममें अनंतकालतैं अनंत सर्वज्ञ देव ऐसैंही कह्या है ॥ अब आगै

पंडितपंडितमरणकूं संक्षेपकरि कहूंगा । ऐसैं बालपंडितमरणकूं दश गाथानिमैं वर्णन कीया ॥

श्रावकके १७ नियम ।

भोजने[१] षटरसे[२] पाने[३], कुंकुमादि[४] विलेपने ।
पुष्प[५] ताम्बुल[६] गीतेषु[७], नृत्यादि[८] ब्रह्मचर्यके[९] ॥१॥
स्नाने[१०] भूषण[११] वस्त्रेषु[१२] वाहने[१३] शयें[१४] नासने[१५] ।
सचित्तंचे[१६] दिशा[१७]त्याज्य मेतत् सप्त दशानि च ॥२॥

जिनमतका मूल सिद्धांत ।

अहिंसा परमो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः ॥

प्रश्न—हिंसा किसको कहते है ?

उत्तर—(१) अपने मनमें अपनी आत्माका बुरा व दूसरोंका बुरा विचारना हिंसा है । अपने बचनोंसे दूसरोंके मनको और शरीरको दुख देना हिंसा है। अपने शरीरसे दूसरोंके शरीरको दुख पहुंचाना हिंसा है ।

प्रश्न—दया किसको कहते है ?

उत्तर—(१) अपनी आत्माको क्रोध मान माया लोभ मोह और कामसे बचाना दया है । (२) दूसरोंके हरप्रकारके दुःखको अपनी शक्तिभर दूर करना दया है । (३) दया परिणामों (भावों) के आधीन है । (४) किसी प्राणीका अपना शरीरसे नाश

होजानेपर भी यदि हमारे परिणाम उसकी रक्षाके है तो हिंसा नहीं दया है ।

(९) ध्यानके बलसे अपनी आत्माका आपमें लीन होजाना दया है ।

प्रश्न—चार योग याने वेद कौन कौनसे कहते है उसका नाम क्या है ?

उत्तर—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग।

प्रश्न—उपर कहे चार योगकी ओलख क्या है ?

दोहा ।

सुदेव सद्गुरूए कह्यां, सद्आगम सुनो भेद ।
हिंसा जीव जहां नहीं, सत्य शौचनो भेद ॥ १ ॥
प्रथमानु शुभ योगमां, कथा प्रवर्तइ सार ।
उत्तम त्रेसठ पुरूषनी, सुणजो तेह मोजार ॥ २ ॥
अवर योग उत्तम कह्यो, करणानु अभीधान ।
कथा अनोपम तेहमां, त्रीलोकसारनुमान ॥ ३ ॥
निर्मल मुनिवरनी क्रिया, श्रावकनो आचार ।
त्रतिय योग चरणानुए, सांभळजो निरधार ॥ ४ ॥
तत्व अर्थ खट द्रव्यसुं, पंचास्तीकाय ।
द्रव्यानु शुभ योगमां, बोले जिनवरराय ॥ ५ ॥
देव शास्त्र गुरु सत्य ए, परम पराये जान ।
वचन विरोध जहां नही, ते शुभ शास्त्र प्रमाण ॥ ६ ॥

प्रश्न—६३ सलाका पुरुष किसको कहते है ?

उत्तर—नव नारायण, नव प्रति नारायण, नव बलभद्र, बारा चक्रवर्ती और चौवीस तीर्थंकर ।

दो इंद्रिसें पंचेंद्रि तककी पीछान ॥

शंख सीपो ने अळसीया, कुरमी कीतक जोय ।
जळो वाळो अलबधीया, भादरवा बहु होय ॥ १ ॥
जीव बे इंद्रि ये कह्या, इयेल देइ याद ।
तेह तणी रक्षा करो, मुकी सकल प्रमाद ॥
चांचड मांकड जुं बहु, मंकोडा मन आण ।
वीछु कीडी कंथुवा, ए त्रेइंद्रि जाण ॥ २ ॥
डंस मंस माखी घणी, भमरा तीड पतंग ।
इ आदे बहु विधि कह्या, चौ इंद्रि जीव चंग ॥ ४ ॥
नरक पशु सुर मानवी, चौगतिमें उपजंत ।
त्रस पंचेंद्रि ये कह्या, जाणी करो जतन ॥ ५ ॥

प्रश्न—रत्नत्रय किसको कहते है ?

उत्तर—सैम्यक् दर्शनजी, सैम्यक् ज्ञानजी और सैम्यक् चारित्रजी ।

प्र०—सम्यक् दर्शन किसको कहते है ?

उ०—रागादिक मिटावनेका श्रद्धान होय सोइ श्रद्धान सम्यक् दर्शन है ।

प्रश्न—सम्यक्ज्ञान किसको कहते है ?

उत्तर—जैसे रागादिक मिटावनेका जानना होय सोइ जाननां सो सम्यक्ज्ञान है ।

प्रश्न—सम्यक्चारित्र किसको कहते है ?

उत्तर—जैसें रागादिक मिटे सोही आचार सम्यक्चारित्र है ऐसा मोक्षमार्ग प्रकाश पृष्ठ ३२६ में कहा है ।

प्रश्न—राग किसको कहते है ?

उत्तर—किसी पदार्थको इष्ट (मनकुं प्रसन करे) ऐसा जानकर उसमें प्रीतिरूप परिणाम उसको राग कहते है ।

प्रश्न—द्वेष किसको कहते है ?

उत्तर—किसी पदार्थको अपना अनिष्ट (अप्रिय) जान उसमें अप्रीति परिणाम उसीको द्वेष कहते है ।

शिष्यका प्रश्न ।

ज्ञानवंतको भोग निर्जरा हेतु है । अज्ञानीको भोग बंध फल देतु है ॥
यह अचरजकी बात हिये नहि आवही, पुछे कोउ शिष्य गुरू समझावही॥

उत्तर (सवैया ३१सा ।)

दया दान पूजादिक विषय कषायादिक दुहु कर्म भोगयें दुहूको एक खेत हे ॥ ज्ञानी मूढ करम करत दीसे एकसे पैं परिणाम भेद न्यारो न्यारो फल देत है ॥ ज्ञानवंत करनी करे पैं उदासीन रूप ममता न धरे ताते निर्जराको हेतु है ॥ वह करतुति मुढ करेपे मगन रूप अंध भयो ममतासों बंध फल लेत है ॥

अष्टांग वंदनाकी स्तुति ।

जुगल पानी जुगल पांउ, पंचम शीस सपर्श भूवी ।
विमल मनोवच काय, यह अष्टांग प्रणाम हुवी ॥

॥ श्लोक ॥ पुनः

हस्तो पादौ तथा द्वौ द्वौ शिरो भूमौ च पंचमः ।
मनोवाक्काय शुद्धि च प्रणमोऽष्टांगमुच्यते ॥ १ ॥

अष्टांगवंदना करतेसमय निम्नलिखित पढ़ो—

मन वचन कायकी शुद्धता करके वंदो हों; मस्तक नमायके, पृथ्वीसों लगायके, खुशालीसों, प्रफुल्लितत्तासों, बड़ा हर्ष सहित मैं वंदो हों, दंडवत् करों हों, नमस्कार करों हों, अरहंतदेवको वा पंच परमेष्ठीजीको, जय बोलो अरहंत महाराजकी जय ।

अरज करते समय निम्नलिखित पढ़ो ।

धन घड़ी धन्य भाग्य, आजका दिन मेरा जन्म सफल भया, मेरी काया सफल हुई, मेरे नेत्र सफल भये, हे भगवान । दुराचरणथी दूर करी सारे चरणे चलावी तुमारी शरणे लो । जय बोलो पंच परमेष्ठी महाराजकी जय ।

शिखामणका पद ।

घडी दो घडी मंदिरजीमें आय करो । आय करो मन लगाय करो ॥ घडी० ॥ जग धंधेमें सब दिन खोयो । कुच्छ तो

धरममें बीताय करो ॥ घडी० ॥ जग धंधेमें सब धन खोयो । कुच्छ तो धरममें लगाय करो ॥ घडी० ॥ कहे सो ग्यानी सुन भव प्राणी । आवत मनको लगाय करो । घडी दो घडी मंदरजीमें आय करो ॥

राग भेरवी ।

गुरुजी मैंने औगुण बोत किये, प्रभुजी मैंने औगुण बोत किये ॥ पांउ धरे धरनीपे उतने खून भये ॥ गुरुजी० ॥ जितनी नारी नजर भर देखी, उतने पाप भये ॥ गुरुजी० ॥

स्त्री उवाच–जिते पुरुष नजर भर देखे । उतनन पाप भये । ॥ गुरुजी० ॥ रतनचंदकी यही अरज है, बोजा बोत भये, औगुण बोत किये ॥ गुरुजी० ॥

राग––शार्दूल

पुरुष उवाच–

मोटी ते सहु मात्र तुल्य गणुं हुं छोटी गणुं पुत्रीओ ॥
जे होये सम वर्षमां मुज तणां तेने गणुं भगीनीयो ॥
एवी मानव मात्रमां मुज थजो प्रीति तणी वृष्टीयो ॥
आ काले मुजने प्रभु करी कृपा आशिष एवी दीयो ॥

स्त्री उवाच––

मोटा ते सहु पित्र तुल्य गणुं हुं छोटा गणुं पुत्रओ ॥
जे होये समवर्षमां मुज तणा तेने गणुं बन्धुओ ॥
एवी मानव मात्रमां मुज थजो प्रीति तणी वृष्टीओ ॥
आ काळे मुजने प्रभु करी कृपा आशीष एवी दीयो ॥

जिनेन्द्र जन्माभिषेक।

प्रभू पर इंद्र कलश भरी लायो।
शैलराजपर सजि समाज सब, जनम समय नह्वायो ॥टेक॥
क्षीरोदक भरि कनक कुंभमें, हाथो हाथ सुर लायो।
मंत्र सहित सो कलश सचीपति, प्रभु शिरधार ढरायो ॥प्रभू॥१॥
अघघघ भभ भभ घघ घघ घघ घघ, धुनि दशहूं दिशि छायो।
साढ़े बारह कोड़ जातिके, वाजन देव बजायो ॥प्रभू०॥ २ ॥
सचि रचि रचि शृंगार सँवारत, सो नहिं जात बतायो।
भूषन वसन अनूपम सो सजि, हरषित नाच रचायो ॥ प्रभू०॥ ३ ॥
पग नूपुर झननननन बाजत, तननन तान उठायो।
घननननन घंटा घन नादत, ध्रुगत ध्रुगत गत छायो ॥प्र०॥४॥
द्रिम द्रिम द्रिम मृदंग गत बाजत, थेइ थेइ थेइ पग पायो।
सगृहि सरंगि घोर सोर सुनि, भवीक मोर विहसायो ॥प्र०॥५॥
तांडव निरत सचीपति कीनों, निज भवको फल पायो।
निज नियोग करि तब सब सुर मिलि, प्रभुहि पिता घर लायो ॥प्र॥६॥
मातु गोदमें सोंपि प्रभू कहँ, बहु विधि सुख उपजायो ॥
प्रभुसेवा हित देव राखि कें, सुर निज धाम सिधायो ॥प्रभू०॥७॥
प्रभुके वय समान सुरतन धरि, सेवा करत सहायो।
देवी दास वृंद जिनवरको, जनम कल्यानक गायो ॥प्रभू०॥८॥

हजूरी पद (राग धनाश्री)

आ वसंत चले महागीरपर आज प्रभूजीका न्हवन करेंगे ॥आ वसंत०॥टेक॥
कंचन कलस धरे सीर ऊपर। क्षीरदधी जल छान भरेंगे।

केसर और कपुर मिलाके। लाय प्रभूजीका न्हवन करेंगे ।।आ वसंत०।।१।।
अष्ट दरवमें पूजा करके । अक्षय पदकी प्राप्ति करेंगे ।
पुष्प चढाय मंगाय महाचरू। दीपक जोति जगाय धरेंगे ।।आ वसंत०।।२।।
खेवे धुप सुगंध चरन बीच । जात करमके बंस चलेंगे ।
फल चढायके अरघ आरती । अब हम पुन्न भंडार भरेंगे ।।आ वसंत ।।३।।
चरन पकड़ और चमर पसरके । झघर जघर अरज दास करेंगे ।
द्रग सुख सन्मुख होय प्रभुके। मोक्ष लिये बीन नाही टरेंगे ।।आ वसंत० ४।।

जाप करनेके सात प्रकारके महामंत्र ।

(१) पेंतिस अक्षरका मंत्र ।।

णमो अरहंताणं । णमो सिद्धाणं । णमो आइरियाणं । णमो उवज्झायाणं । णमो लोए सब्ब साहूणं ।।

(२) सोलह अक्षरका मंत्र ।

अरहंत सिद्ध आइरिय उवज्झाय साहू ।। अर्थात्–अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः ।।

(३) छह अक्षरका मंत्र ।

।। अरहंत सिद्ध ।।

(४) पांच अक्षरका मंत्र ।।

" असिआउसा " ।। यह पंच परमेष्ठीके आदि अक्षर है ।

(५) चार अक्षरका मंत्र ।।

" अरहंत "

(६) दो अक्षरका मंत्र ॥

" सिद्ध याने अर्हं । "

एक अक्षरका मंत्र ।

" ॐ " इसमें पंचपरमेष्टीके आदि अक्षर सर्व हैं । जैसे अरहंतका अ, अशरीर कहिये सिद्ध तिसका अ, आचार्यका आ, उपाध्यायका उ, और मुनिका म, ऐसे पांच अक्षर–अ अ आ उ म=ओम् अर्थात् ॐ हुवा ऐसा सिद्ध है ॥

॥ गाथा ॥

अरहंता अशरीरा आईरिया तह उवज्झाया मुणिणो ।
पढमक्खरणिप्पराणो ओंकारो पंच परमेठ्ठी ॥ १ ॥

अर्थ–ऊपरके सात प्रकारके महामंत्र कहलाते हैं । इनका जाप करना श्रेष्ठ है और **कर्मबंधके एकसो आठ भेद** अर्थात् द्वार है । इसका कारण १०८ मणि अर्थात् दानेकी मालासे स्मरण करना चाहिये । माला ऊपर तीन दाने होते हैं उनपर सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ऐसा पढ़ना चाहिये ।

मुनि महाराजका पद ।

ऐसे मुनी हमरे मनमें भायो । जाके वंदत पाप नसायो ॥ऐसे०॥
च्यार वीस परिगृह जाने त्यागे । निर्ग्रंथ नांम कहायो ।
तरण तारण वे मुनीवर । कहिए परम जती पद पायो ॥ऐसे०॥१॥

पंच महाव्रत पंच सुमति । त्रय गुप्तीजी धरायो ।
अठवीस मूलगुण जाके सोहीए । रागद्वेष नहीं पायो ॥ऐसे०॥२॥
तीन काल वे जोग जे साधे । पंचम गती मन भायो ।
बावीस परीसह सहते धीरज । शत्रु मित्रु सम मायो ॥ऐसे०॥३॥
ग्रीषम काल परवत पर गडे । रवीसम द्रष्टी लगायो ।
वरषाकाल वृक्ष तले उभे । सीत सरीता तट जायो ॥ऐसे०॥४॥
पंच प्रमाद रहित ऐसे मुनी । क्षपक श्रेणी मन भायो ।
अष्ट करमकुं दूर कीए जीने । सीवरमणी वर पायो ॥ऐसे०॥५॥
ऐसे मुनीकुं निशदिन वंदित । कर्म कलंक नसायो ।
सीवलाल पंडित मन वच तनतें । करजोडी सीर नमायो ॥ऐसे०॥६॥

(२)

सो है जैनका रागी । अवधु सो है जैनका रागी ।
जाकी सुरत मुल धुन लागी ॥अवधु०॥१॥
साधु अष्ट करम सुंज खंड । सुन्य बांधे धर्मशाला ।
सोहं सतका धागा साधे । जपे अजपा माला ॥अवधु०॥२॥
गंगा जुमना मध्य सरस्वती । अधर वहे जलधारा ।
करी स्नान मगन होइ बैठे । तोडे कर्मदल भारा ॥अवधु०॥३॥
आप अभ्यंतर जोत बीराजे । बंकनाळ ग्रहे मुळा ।
पश्चिम दीशकी खडकी खोलो । तो बाजे अणहद तुरा॥अवधु० ४॥
पंच सूनका भर्म मिटाया । छठे मांही समाया ।
विनय प्रभु शुं ज्योत मिली जब । फिर संसार न आया॥अवधु०॥५॥

(३)

अबधु वैराग बेटा जाया । वाने खोज कुटंब सब खाया ॥अबधु॥
जेने ते खाइ ममता माया । सुख दुःख दोनुं भाई ।
काम क्रोध दोनोको खाइ खाइ त्रश्नाबाई ॥ अब० ॥ १ ॥
दुरमत दादी मच्छर दादा मुख देखत ही मुआ ।
मंगलरूपी बधाइ बाजी ए जब बेटा हुआ ॥ अब० ॥ २ ॥
पुन्य पाप पडोशी खाइ । मान काम दोउ मामा ।
मोह नगरका राजा खाया । पीछे प्रेम ते गामा ॥ अब० ॥ ३ ॥
भाव नाम धर्यो बेटाको । महीमा वर्णव्यो न जाय ।
आनंद घन प्रभु भाव प्रगट करो । घट घट रहो समाय ॥अब०॥४॥

आत्माका गुण ।

आतमके गुन गाउ । अब मैं आतमके गुन गाउ ।
और कछु नहीं ध्याउं ॥ अब मैं० ॥ टेक ॥
आप ही ब्रह्मा आप महेसुर । आप हीं वीष्णु कहाउं ।
आप धर्णेंद्र चक्रवत आप ही । आप ही आप समाऊं ॥अब मैं०॥१॥
आप ही ज्ञानी आप ही ध्यानी । आप ही संत कहाउं ।
आप ही वक्ता आप ही श्रोता । आप ही आप मनाउं ॥अब मैं०॥२॥
आप निरंजन आप ही अंजन । आप ही आप नचाऊं ।
आप ही कर्मन आप अकर्मन । आप ही आप बताउं ॥अब मैं०॥३॥
आप ही सुखी आप ही दुखी । आप ही धर्म दिढाऊं ।
आप ही आप अपनमें सेवा । आतमराम लखाऊं ॥ अब मैं० ॥४॥